गोस्वामी तुलसीदास और उनका सौन्दर्यबोध

(Goswami Tulsidas and his Aestheticism)

कंचन शर्मा

गोस्वामी तुलसीदास और उनका सौन्दर्यबोध

गोस्वामी तुलसीदास और उनका सौन्दर्यबोध

(Goswami Tulsidas and his Aestheticism)

कंचन शर्मा

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली – 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5473-4

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

महान् कवि तुलसीदास की प्रतिभा-किरणों से न केवल हिन्दू समाज और भारत, बल्कि समस्त संसार आलोकित हो रहा है। बड़ा अफसोस है कि उसी कवि का जन्म-काल विवादों के अंधकार में पड़ा हुआ है। अब तक प्राप्त शोध-निष्कर्ष भी हमें निश्चितता प्रदान करने में असमर्थ दिखाई देते हैं। मूलगोसाईं-चरित के तथ्यों के आधार पर डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल और श्यामसुंदर दास तथा किसी जनश्रुति के आधार पर 'मानसमयंक'-कार भी 1554 का ही समर्थन करते हैं।

तुलसीदास महाकवि, काव्यसृष्टा और जीवनदृष्टा थे। वे धर्मनिष्ठ समाज सुधारक थे। अपने साहित्य में उन्होंने समाज का आदर्श प्रस्तुत किया, ऐसा महाकाव्य रचा, जो हिन्दी भाषी जनता का धर्मशास्त्र ही बन गया। तुलसी की लोक दृष्टि अलौकिक थी। उन्होंने आदर्श की संकल्पना को यथार्थ जीवन में उतारा। उनके द्वारा रचे गए गौरव ग्रंथ हिन्दी साहित्य के रत्न हैं। सौन्दर्य और मंगल का, प्रेय और श्रेय का, कवित्व और दर्शन का असाधारण सामंजस्य उनके साहित्य की महती विशेषता है। यह तुलसी साहित्य की विराटता ही है कि उसकी सबसे अधिक टीकाएँ रची गई हैं। सबसे अधिक आलोचना ग्रंथ और सबसे अधिक शोध प्रबंधों का प्रणयन तुलसी पर ही है। तुलसीदास के युग का प्रभाव, काव्य सिद्धान्त, काव्य सौष्ठव, प्रतिपाद्य विषय, समन्वय साधना उनके गौरव ग्रंथों से अभिव्यक्ति पाती हैं। नारी

भावना पर अभिव्यक्त विचारों के लिए तुलसीदास जी आलोचना के केंद्र रहे हैं, लेकिन अपने ग्रन्थों में अभिव्यक्त भावों, विचारों और काव्य सौंदर्य एवं भक्ति दर्शन और राम राज्य की परिकल्पना के कारण आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

तुलसी दास के सौन्दर्य–चित्रण में कहीं भी फीकापन या नीरसता नहीं है, सभी रंग चटक हैं। तुलसी कहीं भी, किसी भी अवसर पर, राम और सीता की सुषमा के वर्णन में नहीं चूके हैं, परंतु उन्होंने सौन्दर्य–चित्रण में कहीं भी मर्यादा–भाव को खंडित नहीं होने दिया।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**तुलसीदास–परिचय**	**1**
	तुलसीदास की जन्मभूमि	1
	जाति एवं वंश	2
	माता–पिता	3
	बाल्यकाल और आर्थिक स्थिति	3
	रत्नावली का महाप्रस्थान	6
	केशवदास से संबद्ध घटना	7
	तुलसी का निवास–स्थान	8
	विरोध और सम्मान	9
2.	**तुलसीदास का सौन्दर्य**	**16**
	परिचय	16
3.	**तुलसी की काव्य–कला और कवितावली**	**36**
	रचना काल	37
	कवितावली का संकलन	38
4.	**तुलसीदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय**	**46**
	रामचरितमानस	46
	गीतावली	47

	रामाज्ञा प्रश्न	49
	बरवै रामायण	49
	हनुमान बाहुक	49
	सामाजिक आदर्शों की स्थापना	51
	धार्मिक समन्वय	51
5.	**श्री रामचरितमानस**	**53**
	संक्षिप्त मानस कथा	54
	भाषा-शैली	55
	संक्षिप्त कथा	56
	विश्वामित्र के आश्रम में राम	56
	कैकेयी और कोपभवन	57
	राम और रावण युद्ध	58
	रामचरितमानस	59
	उत्कृष्ट महाकाव्य	59
	तुलनात्मक अध्ययन	62
	बालकाण्ड	65
	भारत की संस्कृति	66
	अयोध्याकाण्ड	66
	अरण्यकाण्ड	67
	लंकाकाण्ड	68
	उत्तरकाण्ड	71
	रामचरितमानस की लोकप्रियता	71
6.	**सुन्दर काण्ड**	**73**
7.	**तुलसी की भक्तिपद्धति**	**96**
8.	**तुलसी काव्य में भक्ति भावना**	**106**
9.	**गीतावली**	**115**
	पूर्ववर्ती रूप	116
	आलोचक कथन	117
	सूरसागर की प्रतियाँ	117

1

तुलसीदास–परिचय

महान कवि तुलसीदास की प्रतिभा–किरणों से न केवल हिन्दू समाज और भारत, बल्कि समस्त संसार आलोकित हो रहा है। बड़ा अफसोस है कि उसी कवि का जन्म–काल विवादों के अंधकार में पड़ा हुआ है। अब तक प्राप्त शोध–निष्कर्ष भी हमें निश्चितता प्रदान करने में असमर्थ दिखाई देते हैं। मूलगोसाईं–चरित के तथ्यों के आधार पर डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल और श्यामसुंदर दास तथा किसी जनश्रुति के आधार पर 'मानसमयंक'–कार भी 1554 का ही समर्थन करते हैं। इसके पक्ष में मूल गोसाईं–चरित की निम्नांकित पंक्तियों का विशेष उल्लेख किया जाता है।

पंद्रह सै चौवन विषै, कालिंदी के तीर,
सावन सुक्ला सत्तमी, तुलसी धरेउ शरीर।

तुलसीदास की जन्मभूमि

तुलसीदास की जन्मभूमि होने का गौरव पाने के लिए अब तक राजापुर (बांदा), सोरों (एटा), हाजीपुर (चित्रकूट के निकट), तथा तारी की ओर से प्रयास किए गए हैं। संत तुलसी साहिब के आत्मोल्लेखों, राजापुर के सरयूपारीण ब्राह्मणों को प्राप्त 'मुआफी' आदि बहिर्साक्ष्यों और अयोध्याकांड (मानस) के तायस प्रसंग, भगवान राम के वन गमन के क्रम में यमुना नदी से आगे बढ़ने पर व्यक्त कवि का भावावेश आदि अंतर्साक्ष्यों तथा तुलसी–साहित्य

की भाषिक वृत्तियों के आधार पर रामबहोरे शुक्ल राजापुर को तुलसी की जन्मभूमि होना प्रमाणित हुआ है।

रामनरेश त्रिपाठी का निष्कर्ष है कि तुलसीदास का जन्म स्थान सोरों ही है। सोरों में तुलसीदास के स्थान का अवशेष, तुलसीदास के भाई नंददास के उत्तराधिकारी नरसिंह जी का मंदिर और वहां उनके उत्तराधिकारियों की विद्यमानता से त्रिपाठी और गुप्त जी के मत को परिपुष्ट करते हैं।

जाति एवं वंश

जाति और वंश के सम्बन्ध में तुलसीदास ने कुछ स्पष्ट नहीं लिखा है। कवितावली एवं विनयपत्रिका में कुछ पंक्तियां मिलती हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे–

दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को।
(विनयपत्रिका)

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हों।
मोको न लेनो न देनो कछु कलि भूलि न रावरी और चितैहौ।।
जानि के जोर करौं परिनाम तुम्हैं पछितैहौं पै मैं न भितैहैं
बाह्मण ज्यों उंगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारे हिए न हितै हौं।

जाति–पांति का प्रश्न उठने पर वह चिढ़ गये हैं। कवितावली की निम्नांकित पंक्तियों में उनके अंतर का आक्रोश व्यक्त हुआ है–

"धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ
काहू की बेटी सों बेटा न व्याहब, काहू की जाति बिगारी न सोऊ।"
"मेरे जाति–पांति न चहौं काहू का जाति–पांति,
मेरे कोऊ काम को न मैं काहू के काम को।"

राजापुर से प्राप्त तथ्यों के अनुसार भी वे सरयूपारीण थे। तुलसी साहिब के आत्मोल्लेख एवं **मिश्र बंधुओं** के अनुसार वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। जबकि सोरों से प्राप्त तथ्य उन्हें सना ब्राह्मण प्रमाणित करते है, लेकिन "दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को' के आधार पर उन्हें शुक्ल ब्राह्मण कहा जाता है। परंतु **शिवसिंह 'सरोज'** के अनुसार सरबरिया ब्राह्मण थे। ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने के कारण कवि ने अपने विषय में 'जायो कुल मंगन' लिखा है। तुलसीदास का जन्म अर्थहीन ब्राह्मण परिवार में

हुआ था, जिसके पास जीविका का कोई ठोस आधार और साधन नहीं था। माता-पिता की स्नेहिल छाया भी सर पर से उठ जाने के बाद भिक्षाटन के लिए उन्हें विवश होना पड़ा।

माता–पिता

तुलसीदास के माता पिता के संबंध में कोई ठोस जानकारी नहीं है। प्राप्त सामग्रियों और प्रमाणों के अनुसार उनके पिता का नाम आत्माराम दूबे था। किन्तु भविष्यपुराण में उनके पिता का नाम श्रीधर बताया गया है। रहीम के दोहे के आधार पर माता का नाम हुलसी बताया जाता है।

सुरतिय नरतिय नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सों सुत होय॥

गुरु

तुलसीदास के गुरु के रूप में कई व्यक्तियों के नाम लिए जाते हैं। **भविष्यपुराण** के अनुसार राघवानंद, **विलसन** के अनुसार जगन्नाथ दास, सोरों से प्राप्त तथ्यों के अनुसार नरसिंह चौधरी तथा ग्रियर्सन एवं अंतर्साक्ष्य के अनुसार नरहरि तुलसीदास के गुरु थे। राघवनंद के एवं जगन्नाथ दास गुरु होने की असंभवता सिद्ध हो चुकी है। वैष्णव संप्रदाय की किसी उपलब्ध सूची के आधार पर ग्रियर्सन द्वारा दी गई सूची में, जिसका उल्लेख राघवानंद तुलसीदास से आठ पीढ़ी पहले ही पड़ते हैं। ऐसी परिस्थिति में राघवानंद को तुलसीदास का गुरु नहीं माना जा सकता।

सोरों से प्राप्त सामग्रियों के अनुसार नरसिंह चौधरी तुलसीदास के गुरु थे। सोरों में नरसिंह जी के मंदिर तथा उनके वंशजों की विद्यमानता से यह पक्ष संपुष्ट हैं। लेकिन महात्मा **बेनी माधव दास** के 'मूल गोसाईं-चरित' के अनुसार हमारे कवि के गुरु का नाम नरहरि है।

बाल्यकाल और आर्थिक स्थिति

तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहिर्साक्ष्यों से उनके माता-पिता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर प्रकाश नहीं पड़ता। केवल 'मूल गोसाईं-चरित' की एक घटना से उनकी चिंत्य आर्थिक स्थिति पर क्षीण प्रकाश पड़ता है। उनका यज्ञोपवीत कुछ ब्राह्मणों ने सरयू के तट

पर कर दिया था। उस उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि किसी सामाजिक और जातीय विवशता या कर्तव्य–बोध से प्रेरित होकर बालक तुलसी का उपनयन जाति वालों ने कर दिया था।

तुलसीदास का बाल्यकाल घोर अर्थ–दारिद्रय में बीता। भिक्षोपजीवी परिवार में उत्पन्न होने के कारण बालक तुलसीदास को भी वही साधन अंगीकृत करना पड़ा। कठिन अर्थ–संकट से गुजरते हुए परिवार में नये सदस्यों का आगमन हर्षजनक नहीं माना गया–

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाय जननी जनक को।
बारें ते ललात बिललात द्वार–द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।
(कवितावली)

मातु पिता जग जाय तज्यो विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि ललाई।
राम सुभाउ सुन्यो तुलसी प्रभु, सो कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई।।

होश संभालने के पूर्व ही जिसके सर पर से माता–पिता के वात्सल्य और संरक्षण की छाया सदा –सर्वदा के लिए हट गयी, होश संभालते ही जिसे एक मुट्ठी अन्न के लिए द्वार–द्वार विललाने को बाध्य होना पड़ा, संकट–काल उपस्थित देखकर जिसके स्वजन–परिजन दर किनार हो गए, चार मुट्ठी चने भी जिसके लिए जीवन के चरम प्राप्य (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) बन गए, वह कैसे समझे कि विधाता ने उसके भाल में भी भलाई के कुछ शब्द लिखे हैं। उक्त पदों में व्यंजित वेदना का सही अनुभव तो उसे ही हो सकता है, जिसे उस दारुण परिस्थिति से गुजरना पड़ा हो। ऐसा ही एक पद विनयपत्रिका में भी मिलता है–

द्वार–द्वार दीनता कही काढ़ि रद परिपा हूं
हे दयालु, दुनी दस दिसा दुख–दोस–दलन–छम कियो संभाषन का हूं।
तनु जन्यो कुटिल कोट ज्यों तज्यों मातु–पिता हूं।
काहे को रोष–दोष काहि धौं मेरे ही अभाग मो सी सकुचत छुइ सब छाहूं।

(विनयपत्रिका, 275)

तुलसीदास के जीवन की कुछ घटनाएं एवं तिथियां भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। कवि के जीवन-वृत्त और महिमामय व्यक्तित्त्व पर उनसे प्रकाश पड़ता है।

यज्ञोपवीत

मूल गोसाईं चरित के अनुसार तुलसीदास का यज्ञोपवीत माघ शुक्ला पंचमी सं. 1561 में हुआ–

पन्द्रह सै इकसठ माघसुदी। तिथि पंचमि औ भृगुवार उदी।
सरजू तट विप्रन जग्य किए। द्विज बालक कहं उपबीत किए।।

कवि के माता-पिता की मृत्यु कवि के बाल्यकाल में ही हो गई थी।

विवाह

जनश्रुतियों एवं रामायणियों के विश्वास के अनुसार तुलसीदास विरक्त होने के पूर्व भी कथा-वाचन करते थे। युवक कथावाचक की विलक्षण प्रतिभा और दिव्य भगवद्भक्ति से प्रभावित होकर रत्नावली के पिता पं. दीन बंधु पाठक ने एक दिन, कथा के अन्त में, श्रोताओं के विदा हो जाने पर, अपनी बारह वर्षीया कन्या उसके चरणों में सौंप दी। मूल गोसाईं चरित के अनुसार रत्नावली के साथ युवक तुलसी का यह वैवाहिक सूत्र सं. 1583 की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी, दिन गुरुवार को जुड़ा था–

पंद्रह सै पार तिरासी विषै।
सुभ जेठ सुदी गुरु तेरसि पै।
अधिराति लगै जु फिरै भंवरी।
दुलहा दुलही की परी पंवरी।।

आराध्य-दर्शन

भक्त शिरोमणि तुलसीदास को अपने आराध्य के दर्शन भी हुए थे। उनके जीवन के वे सर्वोत्तम और महत्तम क्षण रहे होंगे। लोक-श्रुतियों के अनुसार तुलसीदास को आराध्य के दर्शन चित्रकूट में हुए थे। आराध्य युगल राम-लक्ष्मण को उन्होंने तिलक भी लगाया था–

चित्रकूट के घाट पै, भई संतन के भीर।
तुलसीदास चंदन घिसै, तिलक देत रघुबीर।।

मूल गोसाईं चरित के अनुसार कवि के जीवन की वह पवित्रतम तिथि माघ अमावस्या (बुधवार), सं. 1607 को बताया गया है।

सुखद अमावस मौनिया, बुध सोरह सै सात।
जा बैठे तिसु घाट पै, विरही होतहि प्रात॥

गोस्वामी तुलसीदास के महिमान्वित व्यक्तित्त्व और गरिमान्वित साधना को ज्योतित करने वाली एक और घटना का उल्लेख मूल गोसाईं चरित में किया गया है। तुलसीदास नंददास से मिलने बृंदावन पहुंचे। नंददास उन्हें कृष्ण मंदिर में ले गए। तुलसीदास अपने आराध्य के अनन्य भक्त थे। तुलसीदास राम और कृष्ण की तात्त्विक एकता स्वीकार करते हुए भी राम-रूप श्यामघन पर मोहित होने वाले चातक थे। अत: घनश्याम कृष्ण के समक्ष नतमस्तक कैसे होते। उनका भाव-विभोर कवि का कण्ठ मुखर हो उठा–

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बान लियी हाथ॥

इतिहास साक्षी दे या नहीं दे, किन्तु लोक-श्रुति साक्षी देती है कि कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति में बदल गई थी।

रत्नावली का महाप्रस्थान

रत्नावली का बैकुंठगमन 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार सं. 1589 में हुआ। किंतु राजापुर की सामग्रियों से उसके दीर्घ जीवन का समर्थन होता है।

मीराबाई का पत्र

महात्मा बेनी माधव दास ने मूल गोसाईं चरित में मीराबाई और तुलसीदास के पत्राचार का उल्लेख किया गया है। अपने परिवार वालों से तंग आकर मीराबाई ने तुलसीदास को पत्र लिखा। मीराबाई पत्र के द्वारा तुलसीदास से दीक्षा ग्रहण करनी चाही थी। मीरा के पत्र के उत्तर में विनयपत्रिका के निम्नांकित पद की रचना की गई।

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
सो छोड़िये
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।

बलिगुरु तज्यो कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद मंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहां आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहां लौं।
तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों हाय सनेह राम-पद, एतोमतो हमारो॥

तुलसीदास ने मीराबाई को भक्ति-पथ के बाधकों के परित्याग का परामर्श दिया था।

केशवदास से संबद्ध घटना

मूल गोसाईं चरित के अनुसार केशवदास गोस्वामी तुलसीदास से मिलने काशी आए थे। उचित सम्मान न पा सकने के कारण वे लौट गए।

अकबर के दरबार में बंदी बनाया जाना

तुलसीदास की ख्याति से अभिभूत होकर अकबर ने तुलसीदास को अपने दरबार में बुलाया और कोई चमत्कार प्रदर्शित करने को कहा। यह प्रदर्शन-प्रियता तुलसीदास की प्रकृति और प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी, अतः ऐसा करने से उन्होंने इनकार कर दिया। इस पर अकबर ने उन्हें बंदी बना लिया। तदुपरांत राजधानी और राजमहल में बंदरों का अभूतपूर्व एवं अद्‌भुत उपद्रव शुरू हो गया। अकबर को बताया गया कि यह हनुमान जी का क्रोध है। अकबर को विवश होकर तुलसीदास को मुक्त कर देना पड़ा।

जहांगीर को तुलसी-दर्शन

जिस समय वे अनेक विरोधों का सामना कर सफलताओं और उपलब्धियों के सर्वोच्च शिखर का स्पर्श कर रहे थे, उसी समय दर्शनार्थ जहांगीर के आने का उल्लेख किया गया मिलता है।

दांपत्य जीवन

सुखद दांपत्य जीवन का आधार अर्थ प्राचुर्य नहीं, पति -पत्नि का पारस्परिक प्रेम, विश्वास और सहयोग होता है। तुलसीदास का दांपत्य जीवन आर्थिक विपन्नता के बावजूद संतुष्ट और सुखी था। भक्तमाल के प्रियादास की टीका से पता चलता है कि जीवन के वसंत काल में तुलसी पत्नी के

प्रेम में सराबोर थे। पत्नी का वियोग उनके लिए असह्य था। उनकी पत्नी-निष्ठा दिव्यता को उल्लंघित कर वासना और आसक्ति की ओर उन्मुख हो गई थी।

रत्नावली के मायके चले जाने पर शव के सहारे नदी को पार करना और सर्प के सहारे दीवाल को लांघकर अपने पत्नी के निकट पहुंचना। पत्नी की फटकार ने भोगी को जोगी, आसक्त को अनासक्त, गृहस्थ को सन्यासी और भांग को भी तुलसीदल बना दिया। वासना और आसक्ति के चरम सीमा पर आते ही उन्हें दूसरा लोक दिखाई पड़ने लगा। इसी लोक में उन्हें मानस और विनयपत्रिका जैसी उत्कृष्टतम रचनाओं की प्रेरणा मिली।

वैराग्य की प्रेरणा

तुलसीदास के वैराग्य ग्रहण करने के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम, अतिशय आसक्ति और वासना की प्रतिक्रिया और दूसरा, आर्थिक विपन्नता। पत्नी की फटकार ने उनके मन के समस्त विकारों को दूर कर दिया। दूसरे कारण विनयपत्रिका के निम्नांकित पदांशों से प्रतीत होता है कि आर्थिक संकटों से परेशान तुलसीदास को देखकर सन्तों ने भगवान राम की शरण में जाने का परामर्श दिया–

दुखित देखि संतन कह्यो, सोचौ जनि मन मोहूं
तो से पसु पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर निबाहूं।।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति विनाहू।
नाम की महिमा, सीलनाथ को, मेरो भलो बिलोकि, अबतें।।

रत्नावली ने भी कहा था कि इस अस्थि-चर्ममय देह में जैसी प्रीति है, ऐसी ही प्रीति अगर भगवान राम में होती तो भव-भीति मिट जाती। इसीलिए वैराग्य की मूल प्रेरणा भगवदाराधन ही है।

तुलसी का निवास-स्थान

विरक्त हो जाने के उपरांत तुलसीदास ने काशी को अपना मूल निवास-स्थान बनाया। वाराणसी के तुलसीघाट, घाट पर स्थित तुलसीदास द्वारा स्थापित अखाड़ा, मानस और विनयपत्रिका के प्रणयन-कक्ष, तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त होने वाली नाव के शेषांग, मानस की 1704 ई. की पांडुलिपि, तुलसीदास की चरण-पादुकाएं आदि से पता चलता है कि तुलसीदास के जीवन का सर्वाधिक समय यहीं बीता। काशी के बाद कदाचित् सबसे

अधिक दिनों तक अपने आराध्य की जन्मभूमि अयोध्या में रहे। मानस के कुछ अंश का अयोध्या में रचा जाना इस तथ्य का पुष्कल प्रमाण है।

तीर्थाटन के क्रम में वे प्रयाग, चित्रकूट, हरिद्वार आदि भी गए। बालकांड के "दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि–भरि कांवर चले कहारा" तथा "सूखत धान परा जनु पानी" से उनका मिथिला–प्रवास भी सिद्ध होता है। धान की खेती के लिए भी मिथिला ही प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है। धान और पानी का संबंध–ज्ञान बिना मिथिला में रहे तुलसीदास कदाचित् व्यक्त नहीं करते। इससे भी साबित होता है कि वे मिथिला में रहे।

विरोध और सम्मान

जनश्रुतियों और अनेक ग्रंथों से पता चलता है कि तुलसीदास को काशी के कुछ अनुदार पंडितों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था। उन पंडितों ने रामचरितमानस की पांडुलिपि को नष्ट करने और हमारे कवि के जीवन पर संकट ढालने के भी प्रयास किए थे। जनश्रुतियों से यह भी पता चलता है कि रामचरितमानस की विमलता और उदात्तता के लिए विश्वनाथ जी के मन्दिर में उसकी पांडुलिपि रखी गई थी और भगवान विश्वनाथ का समर्थन मानस को मिला था। अन्ततः, विरोधियों को तुलसी के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। विरोधों का शमन होते ही कवि का सम्मान दिव्य–गंध की तरह बढ़ने और फैलने लगा। कवि के बढ़ते हुए सम्मान का साक्ष्य कवितावली की निम्नांकित पंक्तियां भी देती हैं–

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागिबस
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।
मानस वचनकाय किए पाप सति भाय

राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो।राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप

तुलसी से जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो अनुरागत न राम पद
मूढ़ एतो बढ़ो अचरज देखि सुनी सो।।
(कवितावली, उत्तर, 72)

तुलसी अपने जीवन–काल में ही वाल्मीकि के अवतार माने जाने लगे थे–

त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन।

इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।।पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी।

राम चरण रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।
संसार अपार के पार को सगुन रूप नौका लिए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भए।।
(भक्तमाल, छप्पय 129)

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक श्री मधुसूदन सरस्वती को तुलसीदास का समसामयिक बताया है। उनके साथ उनके वादविवाद का उल्लेख किया है और मानस तथा तुलसी की प्रशंसा में लिखा उनका श्लोक भी उद्घृत किया है। उस श्लोक से भी तुलसीदास की प्रशस्ति का पता मालूम होता है–

आनन्दकाननेह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः
कविता मंजरी यस्य, राम-भ्रमर भूषिता।

जीवन की सांध्य वेला

तुलसीदास को जीवन की सांध्य वेला में अतिशय शारीरिक कष्ट हुआ था। तुलसीदास बाहु की पीड़ा से व्यथित हो उठे तो असहाय बालक की भांति आराध्य को पुकारने लगे थे–

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं,
बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।
बरसत बारि पोर जारिये जवासे जस,

रोष बिनु दोष, धूम-मूलमलिनाई है।।करुनानिधान हनुमान महा बलबान,

हेरि हैसि हांकि फूंकि फौजें तै उड़ाई है।
खाए हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है।
(हनुमान बाहुक, 35)

निम्नांकित पद से तीव्र पीड़ानुभूति और उसके कारण शरीर की दुर्दशा का पता चलता हैं–

पायेंपीर पेटपीर बांहपीर मुंहपीर
जर्जर सकल सरी पीर मई है।

देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है॥
हौं तो बिन मोल के बिकानो बलि बारे हीं तें,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के निकट बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय राम रा ऐरती हाल कहुं भई है॥
दोहावली के तीन दोहों में बाहु-पीड़ा की अनुभूति–
तुलसी तनु सर सुखजलज, भुजरुज गज बर जोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपिकेसरी किसोर॥
भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रबेस।
बिहगराज बाहन तुरत, काढ़िअ मिटे कलेस॥
बाहु विटप सुख विहंग थलु, लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिए, बेगि दीन हित लागि॥

आजीवन काशी में भगवान विश्वनाथ का राम कथा का सुधापान कराते–कराते असी गंग के तीर पर सं. 1680 की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन तुलसीदास पांच भौतिक शरीर का परित्याग कर शाश्वत यशःशरीर में प्रवेश कर गए।

तुलसीदास महाकवि, काव्यसृष्टा और जीवनदृष्टा थे। वे धर्मनिष्ठ समाज सुधारक थे। अपने साहित्य में उन्होंने समाज का आदर्श प्रस्तुत किया, ऐसा महाकाव्य रचा, जो हिन्दी भाषी जनता का धर्मशास्त्र ही बन गया। तुलसी की लोक दृष्टि अलौकिक थी। उन्होंने आदर्श की संकल्पना को यथार्थ जीवन में उतारा। उनके द्वारा रचे गए गौरव ग्रंथ हिन्दी साहित्य के रत्न हैं। सौन्दर्य और मंगल का, प्रेय और श्रेय का, कवित्व और दर्शन का असाधारण सामंजस्य उनके साहित्य की महती विशेषता है। यह तुलसी साहित्य की विराटता ही है कि उसकी सबसे अधिक टीकाएँ रची गई हैं। सबसे अधिक आलोचना ग्रंथ और सबसे अधिक शोध प्रबंधों का प्रणयन तुलसी पर ही है। तुलसीदास के युग का प्रभाव, काव्य सिद्धान्त, काव्य सौष्ठव, प्रतिपाद्य विषय, समन्वय साधना उनके गौरव ग्रंथों से अभिव्यक्ति पाती हैं। नारी भावना पर अभिव्यक्त विचारों के लिए तुलसीदास जी आलोचना के केंद्र रहे हैं। लेकिन अपने ग्रन्थों में अभिव्यक्त भावों, विचारों और काव्य सौंदर्य एवं

भक्ति दर्शन और राम राज्य की परिकल्पना के कारण आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

तुलसीदास जी ने एक दर्जन ग्रन्थों की रचना की जिनमें – रामचरितमानस, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, दोहावली प्रमुख हैं। तुलसीदास जी भारतीय संस्कृति के बहुत बड़े पोषक रहे,धार्मिक दृष्टा रहे, वहीं उन्होने समाज की भी अनदेखी नहीं की, समाज के कष्टों से भी रूबरू हुए। उस समय भारतीय समाज ऊँच-नीच, जाति, वर्ग, इस्लामी शासकों के आतंक और बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा तथा जीवन से पलायनवादी दृष्टिकोण आदि ने जहां समाज को खोखला बना दिया था, वहीं जन सामान्य की जर्जर आर्थिक स्थिति,निर्धनता,विपन्नता और मजबूरी को चित्रित करते हुए उन्होंने कहा –

खेती न किसान को,भिखारी को न भीख बलि।
बणिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सिद्धमान सोच बस,
कहें एक एकन सौं,कहाँ जाय का करी।

तुलसीदास जी ने समाज की इस स्थिति का सबसे बड़ा कारण तत्कालीन शासकों का विलासी और पाप पूर्ण जीवन व्यतीत करने को बताया। सत्ता और तलवार के बल पर मुस्लिम शासक इस्लाम फैलाने के लिए कृत संकल्प थे। जिस कारण जनता और अधिक आक्रांत थी। इसीलिए तुलसीदास जी ने लोक मंगल की कामना से युक्त भगवान राम जैसे मर्यादा के रक्षक तथा प्रजा पालक राजा राम तथा राम राज्य की कामना की। तुलसीदास जी जहां समाज चिंतक और समाज सुधारक थे वहीं बहुत बड़े धार्मिक तथा दार्शनिक जीवन दृष्टा भी थे। उनके समय तक हिन्दू समाज अनेक धार्मिक संप्रदायों में बंट गया था यथा – सिद्धों, नाथ योगियों, शैव, शाक्त, अद्वैतवादी वैष्णव, द्वैतवादी वैष्णवों के आपसी विरोधों ने धार्मिक आस्था में पूरी तरह वैमनस्य ला दिया था। इसके उपचार स्वरूप तुलसीदास जी ने परस्पर विरोधी विचारों को अपने जीवन दर्शन से एक साथ लाने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी रामचरित मानस में राम तथा शिव को परस्पर एक दूसरे का प्रशंसक दिखाया,जिससे शैव तथा शाक्तों को एक दूसरे के निकट लाया जा सके। उन्होंने अपनी

दार्शनिक मान्यताओं में सगुण, निर्गुण,ज्ञान भक्ति तथा कर्म का औचित्य तथा महत्व स्थापित किया।

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा,गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

राम भक्ति के माध्यम से तुलसी ने न केवल ज्ञान भक्ति और कर्म का समन्वित दर्शन प्रस्तुत किया अपितु समस्त संसार को सियाराममय ही कर दिया–

सिया राम मय सब जग जानी
करउ प्रणाम जोरि जुग पानि ॥

यह शुद्ध रूप से मानवतावादी दर्शन है।

तुलसीदास के आविर्भाव से बहुत पहले भारतीय जनमानस में 'राम' का चरित्र व्याप्त था। महर्षि वाल्मीकि से पूर्व वाचिक और श्रुति परम्परा में राम की कथा और उनका चरित्र रचा बसा था। महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' में राम का स्वरूप मानवीय गुणों से युक्त पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित है। 'अध्यात्म रामायण' में राम ब्रह्म–स्वरूप थे। पुराणों में राम विष्णु के दस अवतारों में से एक माने गए। संत कबीरदास ने राम को निर्गुण ब्रह्म का प्रतीक माना। इन सबके बाद आने वाले महाकवि तुलसीदास ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के काव्य में व्यक्त राम की अवधारणा से प्रेरित और प्रभावित होते हुए राम की कथा और उनके स्वरूप को तद्युगीन सन्दर्भों में पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास किया।

तुलसी–काव्य के मर्म को समझने और समझाने की यात्रा निरंतर जारी है। तुलसी की पहुँच घर–घर में है, या वे व्यापक समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। तुलसीदास के सम्पूर्ण कृतित्त्व में अब भी वह प्रेरक और सम्मोहिनी शक्ति विद्यमान है, जो पहले लिखे और कहे गए से आगे बढ़कर सोचने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए पाठकों और आलोचकों को निरंतर प्रेरित करते हुए सक्रिय बनाए रखे हुए है। भक्ति के कारण अंत:करण को जितनी भी शुभ वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं, उन सबको 'विनयपत्रिका' में देखा जा सकता है। तुलसी की रचनाओं के प्रचलित होने का एक कारण यह भी है कि उनमें संगीत के प्रति गहरा रुझान दिखाई देता है। उनकी राग–रागिनियाँ रसानुकूल, समयानुकूल, भावानुकूल और शास्त्र–सम्मत हैं। शब्द–विधान लय–ताल से परिपूर्ण एवं वर्ण–विन्यास सुमधुर हैं। इनकी रचनाओं

में भावनाओं का तीव्र आवेग संगीत के यथोचित प्रयोग से संभव हुआ है। संगीत में राग और ताल दोनों का ही महत्त्व है। तुलसी ने प्रत्येक राग के स्वरूप के अनुसार ही छंदों का भी उपयुक्त विधान किया। इनकी संगीत मर्मज्ञता का साक्षात् प्रमाण 'विनयपत्रिका' है, जिसमें गीति-तत्त्वों का सुंदर-सरस निर्वहण हुआ है। इसमें गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएं संगीतात्मकता, आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्तता, अनुभूति की एकता और भावानुरूप-भाषा शैली मौजूद हैं। राग-रागिनियों के आधार पर काव्य सृजन ने इसमें अद्‌भुत संगीतिकता और गेयता प्रदान की है। एक प्रसंग में भगवान नारद से कहते हैं, जहां मेरे भक्त प्रेमपूर्वक मेरा कीर्तन करते हैं, वहीं मैं निवास करता हूँ।

"नाहं बसामी वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्‌भक्ता यत्र गायन्ति यत्र तिष्ठामि नारद॥"

मध्यकाल में तुलसी के समय तक काव्य भाषा के रूप में अवधी और ब्रजभाषा का प्रचलन था। तुलसी ने दोनों में काव्य रचना की। तुलसी की काव्य भाषा के सम्बन्ध में शुक्ल जी ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है, "सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामी जी की है भाषा की सफाई और वाक्य रचना की निर्दोषता, जो हिंदी के और किसी कवि में नहीं पाई जाती। इतनी सधी हुई भाषा और किसी की नहीं है। सारी रचनाएँ इस बात का उदाहरण हैं।" तुलसी ने मानस में रामकथा अवधी में कही है। कवितावली, गीतावली और विनयपत्रिका की रचना ब्रजभाषा में की।

कवितावली की भाषा में तुलसी ने लोक में प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। लोक में प्रचलित ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। कवितावली में तत्सम, तद्‌भव और देशज शब्दों का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। कवितावली में डिंगल भाषा का भी प्रयोग मिलता है।

'परहित सरिस धरम नहि भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधिमाइ' जैसे एक संस्कारित जीवन को चलाने के लिए आवश्यक जीवन मूल्यों का समावेश भी तुलसी के साहित्य में है।

रामचरितमानस लोक-शिक्षा, लोक-प्रेरणा, लोकोपदेश, लोक-व्यवहार तथा लोकाचार का विश्व कोश है। गोस्वामी तुलसीदास के इस महान ग्रन्थ में पाठकों को लोकानुभव जन्य अनेक ऐसे सदुपदेश उपलब्ध होतें हैं, जिनके द्वारा समाज बुराइयों से सजग रहकर भलाई की ओर सरलता से अग्रसर हो

सके और अपने जीवन तथा समाज को सुखी बना सके। उन्होंने रामचरितमानस में पग–पग पर नीति–निरूपण करते हुए समाज को सदाचार, मर्यादा–पालन, नियम–पालन आदि की शिक्षा तथा प्रेरणा दी है। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा, मैत्री, अनासक्ति, इंद्रिय निग्रह, पवित्रता, निश्छलता, त्याग, उदारता, विराटसत्ता के प्रति गहन आस्था, मानवता, प्रेम, परोपकार लोक–संग्रह आदि जिन सात्विक भावों का सर्वाधिक प्रचार एवं प्रसार दृष्टिगोचर होता है वे सभी भाव तुलसी दास के साहित्य में विद्यमान होने के कारण आज तक प्रासंगिक है।

2

तुलसीदास का सौन्दर्य

सौंदर्यशास्त्र संवेदनात्मक–भावनात्मक गुण–धर्म और मूल्यों का अध्ययन है। कला, संस्कृति और प्रकृति का प्रतिअंकन ही सौंदर्यशास्त्र है। सौंदर्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र का एक अंग है। इसे सौन्दर्य मीमांसा तथा आनन्द मीमांसा भी कहते हैं।

सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है, जिसमें कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाला अथवा उनमें निहित रहने वाले सौंदर्य का तात्विक, दार्शनिक और मार्मिक विवेचन होता है। किसी सुंदर वस्तु को देखकर हमारे मन में जो आनन्ददायिनी अनुभूति होती है उसके स्वभाव और स्वरूप का विवेचन तथा जीवन की अन्यान्य अनुभूतियों के साथ उसका समन्वय स्थापित करना इनका मुख्य उद्देश्य होता है।

परिचय

सौंदर्यशास्त्र दर्शन की एक शाखा है, जिसके तहत कला, साहित्य और सुन्दरता से संबंधित प्रश्नों का विवेचन किया जाता है। ज्ञान के दायरे से भिन्न इंद्रिय–बोध द्वारा प्राप्त होने वाले तात्पर्यों के लिए यूनानी भाषा में 'एस्तेतिको' शब्द है, जिससे 'एस्थेटिक्स' की व्युत्पत्ति हुई। प्रकृति, कला और साहित्य से संबंधित क्लासिकल सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण विकसित हुआ। यह नजरिया केवल कृति की सुन्दरता और कला–रूप से ही अपना सरोकार

रखते हुए उसके राजनीतिक और संदर्भगत आयामों को विमर्श के दायरे से बाहर रखता है। लेकिन कला और साहित्य विवेचना की कुछ ऐसी विधियाँ भी हैं, जो कृतियों के तात्पर्य और उनकी रचना-प्रक्रिया के सामाजिक और ऐतिहासिक पहलुओं से संवाद स्थापित करती हैं। मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र एक ऐसा ही विमर्श है।

प्राचीन यूनानी दर्शन में **प्लेटो** की रचना 'हिप्पियाज मेजर' में सौंदर्य की अवधारणा पर चर्चा मिलती है। नाटक की दुखांत शैली पर **अरस्तू** द्वारा अपनी रचना पोइटिक्स में किये गये विचार ने कला-आलोचना को लम्बे अरसे तक प्रभावित किया है। कला और सौंदर्य पर हुए गैर-पश्चिमी प्राचीन चिंतन के संदर्भ में भरत के **'नाट्यशास्त्र'**, **अभिनवगुप्त** के 'रस-सिद्धांत' और चीनी विद्वान चेंग **यिन-युवान** की रचना 'ली-ताई मिंग-हुआ ची' (रिकॉर्ड ऑफ फेमस पेंटिंग्ज) द्वारा प्रस्तुत अनूठे और विस्तृत विमर्शों का लोहा पश्चिमी जगत में भी माना जाता है। कला-अनुशीलन की इस परम्परा की व्याख्या करने के गैर-पश्चिमी मानक अभी तक नहीं बन पाये हैं और पश्चिमी मानकों के जरिये की गयी व्याख्याओं के नतीजे असंतोषजनक निकले हैं।

पश्चिमी विचार-जगत में एक दार्शनिक गतिविधि के तौर पर सौंदर्यशास्त्र की पृथक संकल्पना अट्ठारहवीं सदी में उभरी जब कला-कृतियों का अनुशीलन हस्त-शिल्प से अलग करके किया जाने लगा। इसका नतीजा सिद्धांतकारों द्वारा ललित कला की अवधारणा के सूत्रीकरण में निकला। **अलेक्सांदेर गोत्तलीब बॉमगारतेन** ने 1750 में 'एस्थेटिका' लिख कर एक बहस का सूत्रपात किया। इसके सात साल बाद डेविड ह्यूम द्वारा 'ऑफ द स्टैंडर्ड ऑफ टेस्ट' लिख कर सौंदर्यशास्त्र के उभरते हुए विमर्श को प्रश्नांकित किया गया। लेकिन आधुनिक यूरोपीय सौंदर्यशास्त्रीय विमर्श की वास्तविक शुरुआत **इमैनुएल कांट** की 1790 में प्रकाशित रचना 'क्रिटीक ऑफ जजमेंट' से हुई। अपनी इस कृति में कांट ने सौंदर्यशास्त्रीय आकलन की कसौटियों को सार्वभौम बनाने पर जोर दिया। लेकिन दूसरी ओर वे किसी भी तरह के सार्वभौम सौंदर्यशास्त्र की सम्भावना पर संदेह करते हुए भी नजर आये। इस विरोधाभास के बावजूद कांट की उपलब्धि यह रही कि उन्होंने कला और सौंदर्य की विवेचना के लिए कुछ अनिवार्य द्विभाजनों को स्थापित कर दिया। इन द्विभाजनों में सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं—इंद्रियबोध और तर्क-बुद्धि, सारवस्तु

और रूप, अभिव्यक्ति और अभिव्यक्त, आनंद और उपसंहार, स्वतंत्रता और आवश्यकता आदि। कांट की दूसरी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने सौंदर्यशास्त्रीय अनुभव और ऐंद्रिक अनुभव के बीच अंतर स्थापित किया। उनका कहना था कि सौंदर्यशास्त्रीय व्याख्या और उसकी निष्पत्ति विश्लेषण के लक्ष्य के प्रति बिना किसी व्यावहारिक आसक्ति के ही की जानी चाहिए।

उन्नीसवीं सदी के बारे में कहा जा सकता है कि वह सौंदर्यशास्त्र की शताब्दी थी। कांट की बनायी गयी जमीन पर ही बाद में जर्मन विद्वानों ने सौंदर्यशास्त्र का वृहत्तर दार्शनिक ढाँचा खड़ा किया। **हीगेल** ने अपनी रचना लेक्चर्स ऑन एस्थेटिक्स में, **शॉपेनहॉर** ने 'द वर्ल्ड एज विल ऐंड रिप्रजेंटेशन' में और **नीत्शे** ने 'बर्थ ऑफ ट्रैजेडी' में पश्चिमी सौंदर्यशास्त्र के विभिन्न पहलुओं की बारीक व्याख्याएँ कीं और उसके नये आयामों को प्रकाशित किया। उन्नीसवीं सदी के आखिरी दौर में अंग्रेजी भाषी सौंदर्यशास्त्र में रूपवाद का उभार हुआ। विक्टोरियायी ब्रिटेन ने 'कला कला के लिए' का नारा दिया, जिसके प्रवक्ताओं में **ऑस्कर वाइल्ड** का नाम उल्लेखनीय है। विशुद्ध सौंदर्यशास्त्रीय अनुभव पर बल देने वाले रूपवादी दृष्टिकोण ने लगभग सभी क्षेत्रों में आधुनिक कला-रूपों को गहराई से प्रभावित किया। लेकिन इस आंदोलन के विरोध की ध्वनियाँ महान रूसी साहित्यकार **लियो तॉल्स्तॉय** की रचना 'व्हाट इज आर्ट?' और अमेरिकी परिणामवाद के प्रमुख प्रवक्ता **जॉन डिवी** की कृति 'आर्ट एज एक्सपीरिएंस' में सुनायी दीं। तॉल्स्तॉय का तर्क था कि जो कला मनुष्यों के बीच नैतिक अनुभूतियों का सम्प्रेषण नहीं कर सकती, वह रूपवादी कसौटियों के हिसाब से कितनी भी महान क्यों न हो, उसकी सराहना नहीं की जा सकती। डिवी ने भी सम्प्रेषण की भूमिका के सवाल पर रूपवाद से लोहा लेते हुए कला को सौंदर्यशास्त्र के नाम पर उसके दायरे के बाहर मौजूद अनुभव की संरचनाओं से काट कर रखने का विरोध किया।

सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन की जर्मन परम्परा बीसवीं सदी में भी जारी रही। घटनाक्रियाशास्त्र, व्याख्याशास्त्र और मार्क्सवाद के औजारों का इस्तेमाल करके सौंदर्यशास्त्र संबंधी सिद्धांतों को और समृद्ध किया गया। 1936 में **मार्टिन हाईडैगर** ने 'द ओरिजन ऑफ द वर्क ऑफ आर्ट' जैसा निबंध लिखा, जिसे कला के दर्शन की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में से एक माना जाता है। हाईडैगर ने इस निबंध में दावा किया कि कला-कृति को इस जगत में

स्थित वस्तु के रूप में देखना आधुनिकता की मूलभूत लाक्षणिक त्रुटियों में से एक है। हाइडैगर के मुताबिक कला तो एक नये जगत के द्वार खोलती है, कला के रूप में सत्य अपने-आप में घटता ही नहीं हमारे अपने अनुभव के दायरे में वस्तुओं के अस्तित्त्व का उद्घाटन भी करता है। इस तरह सौंदर्यशास्त्र के माध्यम से हाईडैगर ने आधुनिकता की आलोचना करते हुए वस्तुओं की पारम्परिक अस्तित्त्व-मीमांसा और प्रौद्योगिकीय व्याख्या को आड़े हाथों लिया।

बीसवीं सदी के मध्य तक सौंदर्यशास्त्र की उपयोगिता पर सवाल उठने लगे। सदी की शुरुआत में दिये गये अपने कुछ व्याख्यानों में **एडवर्ड बुलो** यह प्रश्न पूछ चुके थे कि कहीं कला और सौंदर्य की परिभाषाएँ कलाकार की सृजन- क्षमता का क्षय तो नहीं कर रही हैं। ये व्याख्यान 1957 में छपे और साठ के दशक में अमेरिकी कलाकार **बारनेट न्यूमैन** ने ऐलान कर दिया कि सौंदर्यशास्त्र का उपयोग कला के लिए वही है, जो पक्षीशास्त्र का पक्षियों के लिए हैं। अर्थात् सौंदर्यशास्त्र से अनभिज्ञ कलाकार ही अच्छा है। संस्कृति-अध्ययन के तहत सौंदर्यशास्त्र के अभिजनोन्मुख रुझानों की कड़ी परीक्षा की गयी है। **पिएर बोर्दियो** ने संस्कृति के समाजशास्त्र के तहत कला के विचारधारात्मक आधार की न केवल शिनाख्त की बल्कि यह भी कहा कि इसी कारण से सौंदयशास्त्र अपनी ही सांस्कृतिक और राजनीतिक जड़ों का संधान नहीं कर पाया है। बोर्दियो के इस विचार का प्रतिवाद **एडोर्नो** की रचना 'एस्थेटिक थियरी' में मिलता है। एडोर्नो बीसवीं सदी की अवाँगार्द कला का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि कला में अभी भी विचारधारा का प्रतिवाद करने की क्षमता है। एडोर्नो के मुताबिक कला अपने समाज की उपज जरूर होती है, पर उसका रचना- प्रक्रिया में सामाजिक नियतत्त्ववाद से स्वायत्त क्षण भी निहित होता है। इसलिए वह कलाकार और उसके दर्शक या पाठक को तत्कालीन प्रभुत्वशाली संस्कृति द्वारा थमाये गये तौर- तरीकों से इतर सोचने का मौका भी देती है। कुछ मार्क्सवादी विद्वानों ने सौंदर्यशास्त्र की एक मार्क्सवादी श्रेणी विकसित करने की कोशिश भी की है। हिंदी के प्रमुख मार्क्सवादी साहित्यालोचक नामवर सिंह ने इस तरह की कोशिशों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हुए इसका पहला उदाहरण सोवियत संघ में 'समाजवादी यथार्थवाद' का शास्त्र-निर्माण माना है। उन्होंने कहा है, 'शास्त्र बनते ही सामाजिक यथार्थ भी सूत्रबद्ध हो गया और उस

यथार्थ को अभिव्यक्त करने की शैली भी। देखते-देखते एक नया रीतिवाद चल पड़ा, रचना में भी, आलोचना में भी। जिस देश ने समाजवादी क्रांति की, वह साहित्य और कला के क्षेत्र में कोई क्रांति करने से ठिठक गया। यथार्थ का ऐसा और इतना अपमान तो क्रांति के पहले के साहित्य में भी नहीं हुआ था और उन्नीसवीं सदी के यूरोप के साहित्य में भी नहीं जब बूर्जुवा क्रांति ने यथार्थवाद को जन्म दिया था। हालत बहुत कुछ हिंदी की रीतिवादी कही जानेवाली साहित्य-प्रवृत्ति की- सी हो गयी, जब अलंकारशास्त्र के लक्षण ग्रंथों को सामने रख कर कविताएँ लिखी जा रही थीं।'

नामवर सिंह ने दूसरा उदाहरण जॉर्ज लूकाच द्वारा रचित सौंदर्यशास्त्र नामक विशाल ग्रंथ का दिया है। वे इसे लूकाच द्वारा अपने लगभग साठ वर्षों के दीर्घ साहित्य-चिंतन को अंततः एक व्यवस्थित शास्त्र में बाँधने का विराट प्रयास करार देते हैं, 'हजारों पृष्ठों का यह विशाल ग्रंथ अभी तक जर्मन भाषा में ही उपलब्ध है और जो जर्मन अच्छी तरह जानते होंगे, वही इसके बारे में कुछ विश्वासपूर्वक कह सकने में सक्षम होंगे। अंग्रेजी में अभी तक उसके बारे में जो कुछ कहा गया है और उसके छिटपुट अंशों से जो आभास मिला है उसके आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि इसमें समस्त कलाओं को 'अनुकरण' में निःशेष करने की असफल चेष्टा की गयी है। इस प्रकार मार्क्सवादी लूकाच जब सभी कलाओं को एक शास्त्र में बाँधने चलते हैं तो अंततः अरस्तू की शरण जाने को बाध्य होते हैं। किसी अंग्रेजी साप्ताहिक ने इस ग्रंथ की समीक्षा के साथ एक ऐसा कार्टून छापा था, जिसमें लुकाच मार्क्स की दाढ़ी के साथ अरस्तू की शक्ल- सूरत और पोशाक में पेश आते हैं।' नामवर सिंह की मान्यता है कि लूकाच के दृष्टांत से मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की इस लम्बी परम्परा का एक कमजोर पहलू सामने आता है। वे कहते हैं कि 'अक्सर वह स्वयं 'कला' नामक संस्था को चुनौती देने में चूक गया और कला की क्लासिकी परिभाषा को स्वीकार कर लेने में उसे कोई हानि नहीं दिखाई पड़ी। बुनियादी रूप में एक बार इन परिभाषाओं को स्वीकार कर लेने के बाद तो फिर थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ इस-उस कवि या कृति के मूल्यांकन का कार्य ही शेष रहता है, और कहने की आवश्यकता नहीं कि मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का जौहर बखूबी दिखाया है– ऊँची संस्कृति के बड़े-से- बड़े विचारकों से होड़ लेते हुए। व्याख्या और मूल्यांकन की भाषा

निश्चय ही भौतिकवादी भी है और ऐतिहासिक भी, लेकिन कुल मिलाकर वह प्रभुत्वशाली परम्परा से बहुत अलग नहीं है।' साहित्य में सौन्दर्य-चित्रण ऐसा धरातल है, जिसके नीचे रंग-रूप-सौन्दर्य-शोभा-लावण्य, मन के मुक्त उल्लास और उमंग, शारीरिक सुषमा, प्रेम-प्रतीति आदि कोमल-कांत भावनाओं से भरपूर छलछलाता, आनंद का अनन्त स्रोत होता है। इस दृष्टि से जब हम तुलसी-साहित्य पर विचार करते हैं तो उनका समूचा साहित्य ज्ञान-वैराग्य-भक्ति से ओत-प्रोत दिखाई देता है। लेकिन इसी में तुलसी की अखण्ड सौन्दर्य-चेतना, उनकी कवि-आत्मा, अपनी सभी रंगीनियों को लेकर प्रकट हुई है।

'मर्यादा' का कोशगत अर्थ है- सीमा में रहना, नैतिक व्यवस्था, शिष्टाचार का नियम, सदाचरण का औचित्य। इस प्रकार मर्यादा का संबंध मनुष्य के ऐसे व्यवहार या सदाचरण से है, जिसे समाज उचित मानता है। धर्म, नीति, लौकिक रीति रिवाज और औचित्य सिद्धांत आदि मर्यादा के आधार तत्त्व हैं। सौन्दर्य का संबंध व्यक्तित्त्व से होता है और व्यक्तित्त्व चरित्र का अनिवार्य अंग है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार बाह्य आकृति से ही व्यक्ति के गुणों का बोध हो जाता है। "आकृतो गुणा"। प्रत्येक कवि अपने पात्रों के सौन्दर्य का गठन अपने दृष्टिकोण, उद्देश्य और भावनाओं के अनुरूप करता है। मार्यादावादी और वैरागी भक्त होने के नाते तुलसी सीता माता या अन्य स्त्री पात्रों का नख-शिख वर्णन तो नहीं कर सकते थे, परंतु कवि होने के नाते उन्हें नख-शिख-वर्णन करना अवश्य था। अतः उन्होंने कवि-कर्म का निर्वाह करते हुए नख-शिख निरूपण की परिपाटी राम के सौन्दर्य-चित्रण में पूरी की।

तुलसी के सौन्दर्य-चित्रण के संबंध् में **डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा** ने ठीक ही लिखा है कि, "ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी के संपूर्ण साहित्य में ज्ञान-वैराग्य-भक्ति के झीने आवरण के नीचे झिलमिलाती सौन्दर्य व सुषमा की मधुमय दीप्ति है। तुलसी कहीं भी रस-रूप, रंग और उमंग के विरुद्ध नहीं प्रतीत होते।" उनके सौन्दर्य-चित्रण में कहीं भी फीकापन या नीरसता नहीं है, सभी रंग चटक है। तुलसी कहीं भी, किसी भी अवसर पर, राम और सीता की सुषमा के वर्णन में नहीं चूके हैं, परंतु उन्होने सौन्दर्य-चित्रण में कहीं भी मर्यादा-भाव को खंडित नहीं होने दिया। तुलसी की सौंदर्य-चित्रण की। इस दृष्टि का विश्लेषण हम आगे राम, सीता तथा अन्य पात्रों के सौंदर्य-निरूपण की कला के अंतर्गत करेंगे।

1. राम का सौन्दर्य-चित्रण

सौन्दर्य को सुंदर, मधुर ललित, भव्य, उदात्त कोटियों में विभक्त किया जाता है। सुंदर वह है, जो सामान्यरूप से हमारे सौन्दर्य-बोध को तृप्त करे। मधुर जो विशेष प्रिय हो। ललित, जो अत्यधिक प्रिय हो। भव्य वह है, जो अपने प्रभाव से हमारी चेतना को स्वीकार कर ले। उदात्त में चेतना की गति को अवरुद्ध कर देने की शक्ति होती है। भव्य और उदात्त-सौन्दर्य में अलौकिक तत्त्वों का विशेष योग होता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने राम के रूप-सौन्दर्य के निरूपण में सौन्दर्य की उपर्युक्त सभी कोटियों को ग्रहण किया है। वे सौन्दर्य के उपासक हैं। उनके राम सुंदर हैं और वे सुंदर के लिए संपूर्ण रूप से, सर्वात्मना, समर्पित हैं। रामचरितमानस में विस्तृत रूप में केवल राम के ही रूप-सौन्दर्य का वर्णन है। राम के रूप का वर्णन विस्तृत रूप में पाँच बार हुआ है। चार बार बालकांड में और एक बार उत्तरकांड में। इसके अतिरिक्त राम के अन्य रूप-वर्णन अत्यंत संक्षिप्त हैं और उनकी नियोजना भक्तों की भावना में तीव्रता भर देने के लिए हुई है।

विश्व-रूप-राशि राम को अपनी गोद में निरखकर माता कौशल्या का मन कितना आह्लादित होता है, इसका प्रत्यक्ष वर्णन तुलसीदास ने अपनी आँखों से नहीं, अपितु स्वयं उस माँ, कौशल्या की आँखों से देखकर किया है। उनके नील कमल और गंभीर मेघ के समान श्याम शरीर में करोड़ों कामदेवों की शोभा है। लाल-लाल चरण कमलों में नखों की ज्योति ऐसी मालूम होती है, जैसे कमल के पत्तों पर मोती स्थिर हों। उनके रूप का वर्णन वेद और शेष जी भी नहीं कर सकते। उसे तो वही जान सकता है, जिसने उन्हें स्वयं में देखा हो। तुलसीदास के शब्दों में–

''काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा।।
अरुन चरन पंकज नख जोति। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती।।
रूपसकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा।।''

माता कोशल्या को राम ने अपना अद्‌भुत रूप दिखाया था, जिसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्राह्माण्ड लगे हुए हैं। ''अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन।।'' पुत्र राम के रूप में बलवती माया को देखकर माता का शरीर पुलकित हो गया, उनके मुख से वचन नहीं निकलता। उन्होंने अपनी आँखें मूँदकर श्रीराम के चरणों में

सिर नवाया। ''तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा।।''

इन संदर्भों से स्पष्ट होता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने आराध्य देव श्रीराम के सौन्दर्य-चित्रण में आध्यात्मिकता का पुट दिया है।

2. राम के सौन्दर्य-चित्रण में शील और शक्ति का समन्वय

सौन्दर्य-चित्रण के संदर्भ में तुलसीदास की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि उन्होंने सौन्दर्य को कहीं भी कलुषित नहीं होने दिया। इसलिए जहाँ भी सौन्दर्य-वर्णन का अवसर आता है वे उसके साथ शील का पुट भी अवश्य दे देते हैं। इसी प्रकार शील के साथ शक्ति का प्रयोग कर देते हैं। मुनि के साथ राम-लक्ष्मण जनकपुर की ओर यात्रा कर रहे हैं। इस अवसर पर गोस्वामी जी लिखते हैं–

''मुनि के संग बिराजत बीर! बदनु इंदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर।''

इससे कोमलता और सौन्दर्य का चित्र हमारी आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता है, किंतु सौन्दर्य के साथ-साथ शक्ति का पुट देते हुए वे यह भी कहते हैं कि–

''काकपच्छ धर, कर कोदंड-सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर।।''

इस प्रकार के सौन्दर्य-वर्णन से तुलसी सौन्दर्य और वीरता का समन्वितरूपपाठक के सामने खड़ा कर देते हैं।

तुलसी के अनुसार राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य को गढ़ने में ब्रह्मा जी ने सुंदरता, शील और स्नेह को सानकर मिलाकर ही मानो इनके रूप रचे हैं। इनके रोम-रोम पर अरबों चन्द्रमा और कामदेव वार कर फेंक दिये हैं। देखने वालों की दृष्टि में उनके चरित्र के भिन्न-भिन्न पहलू उभरते हैं। किसी की दृष्टि में वे शोभा सिंधु हैं तो दूसरों की दृष्टि में प्रताप पुँज हैं।

''सुखमा सील-सनेह सानि मानोरूपबिरंचे सँवारे।
रोम-रोम पर सोम-काम सत कोटि बारि पेफरि डारे।।
कोउ कहै, तेज-प्राप्त-पुंज चितये नहिं जात, भिया रे।।''

यदि उनके रूप की सुधा भरने के लिए जनकपुर की नारियाँ अपने नयन रूप कलशों को खाली करती हैं।

''नख सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौरी''

तो उनका शील स्वभाव देखकर वे उन्हें अपने हृदय में स्थान देने को उत्सुक हो जाती हैं–

''सोभा–सुध आलि! अँचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने।
हेरत हृदय हरत नहिं पूरत चारु बिलोचन कोने।''

ऊपर से कोमल दीखने पर भी उनके अंदर अतुल बल भरा हुआ है, यह सभी को विश्वास है। एक ओर उनकी सुंदरता नेत्रों को आकर्षित करती है तो दूसरी ओर उनका वीरत्व चित्त को आह्लादित करता है।

इस प्रकार तुलसी के राम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है। तुलसी के राम में तीन शक्तियों की प्रधानता को समन्वित रूप से चित्रित किया है। ऐश्वर्य,माधुर्य और सौन्दर्य। जहाँ उनका ऐश्वर्य प्रकट होता है, वहाँ वे लोकरक्षक के रूप में हमारे पूजनीय बन जाते हैं तथा जहाँ पर उनके औदार्य आदि मानवीय गुण प्रकट होते हैं, वहाँ वे हमारे अनुकरणीय बन जाते हैं।

3. सीता का सौन्दर्य-चित्रण

तुलसीदास सीता को माँ के रूप में मानते हैं। अतः माँ के सौन्दर्य का चित्रण किंचित सीमाओं के अंदर ही किया जा सकता है। उनकी उपासना दास्य–भाव की है। नारी–सौन्दर्य–चित्रण में नारी के अंग–प्रत्यंगों के सौन्दर्य का वर्णन करना मर्यादा के विरुद्ध माना जाता है। अतः तुलसी जैसे मर्यादावादी कवि नारी के अंग–प्रत्यंगों को खुले रूप में चित्रण अपनी रचनाओं में कैसे कर सकते थे! इसलिए तुलसी ने केवल सीता के अंग–प्रत्यंग का ही नहीं बल्कि, अन्य किसी भी नारी पात्र के सौन्दर्य–चित्रण पर ध्यान नहीं दिया। नारीगत सौन्दर्य–चित्रण के अवसर पर तुलसी की दृष्टि विशेष रूप से मर्यादावादी भावनाओं से युक्त दिखाई पड़ती है। इस संबंध में **उदयभानु सिंह** ने लिखा है कि ''तुलसी के मर्यादावाद का प्रकृष्ट निदर्शन शृंगार–वर्णन में मिलता है।''

सीता–राम के संयोग और विप्रलंभ का विशद निरूपण करते हुए भी तुलसी ने उसे सर्वथा मर्यादित रखा उल्लेखनीय है कि जयदेव ने पुष्पवाटिका–प्रसंग में सीता के स्तन का भी चित्रण किया है। हस्तिमल्ल ने 'कामदेव–भवन' में, 'माध्वीकुंज' में और 'संकेतस्थल' पर सीता–राम के वासना प्रधान मिलन–विरह का तीन बार निरूपण किया है। इसी प्रकार

कालिदास के विरह-व्याकुल राम पुष्पगुच्छों वाली लता को सुस्तनी सीता समझकर उसका आलिंगन करने जा रहे थे, तब लक्ष्मण ने उन्हें रोका था।

मर्यादावादी कवि तुलसी की दृष्टि प्रसंग आने पर सीता के सौन्दर्य-वर्णन पर अवश्य जाती है, लेकिन वे सीता की कांति, मुखमंडल, साड़ी, भूषणों और कर के वर्णन करने तक ही सीमित रहते हैं।

''अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय ससि मुख भए नयन चकोरा।

सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छवि गृहँ दीपसिखा जनु बरई।।''

सीता जी के नवल शरीर पर साड़ी और आभूषणों की शोभा का कवि ने चित्रण किया, लेकिन साथ ही वे उन्हें जगज्जननी कहकर उनकी महान छवि को अतुलनीय बताते हैं।

''सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी।

भूषन सकल सुदेश सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए।।''

गोस्वामी तुलसीदास जी रूप और गुणों की खान सीता जी की शोभा का वर्णन करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। सीता माता जगदंबिका के समान हैं, जो रूप और गुण की खान है। उनकी शोभा का बखान नहीं किया जा सकता।

''सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिकारूपगुन खानी।।''

जगत् में कोई भी स्त्री सीता जी के समान सुंदर नहीं है, इसलिए उनकी सुंदरता की तुलना किसी स्त्री से नहीं दी जा सकती।

''जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीय।।''

कवि को सीता की सुंदरता में यह कहना पड़ता है कि सखियों के बीच में सीता जी उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं, जैसे बहुत सी छवियों के बीच में महाछवि हो। कर कमल में सुंदर जयमाला है, जिसमें विश्व विजय की शोभा छायी हुई है।

''सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछवि जैसे।।

कर सरोज जयमाला सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई।।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी अपने आराध्य देव श्रीराम की शक्ति सीता को माता स्वरूप मानते हैं। उन्होंने सीता का सौंदर्य-चित्रण मर्यादा की सीमा के अंतर्गत ही किया है।

4. युगल-छवि का सौन्दर्य-चित्रण

तुलसीदास मर्यादावादी कवि हैं। श्रृंगारी-कवियों की भाँति युगल-छवि का चित्रण उन्होंने नहीं किया है। उनकी रचनाओं में कतिपय स्थलों पर युग्म-आराध्यों का मर्यादापूर्ण सौन्दर्य-वर्णन किया है। उनके अनुसार राम-सीता की युगल-छवि को व्यक्त किया ही नहीं जा सकता है। वह तो गूंगे का गुड़ है, उसे व्यक्त कैसे करें!

''राम सीय बयः समौ सुभाय सुहावन। नृप जोवन छबि पुरइ चहत अनु आवन।।

सो छबि जाहू न बरनि देखि मन माँने। सुधा पान करि मूक कि स्वाद बखानै।।''

श्रीराम दूल्हा और जानकी दुलहिन बनी हुई हैं। समस्त सुंदरी स्त्रियाँ गीत गा रही हैं। इस अवसर पर सीता जी का मन राम की रूपराशि की शोभा देखकर लीन हो जाता है। परंतु मर्यादावादी कवि तुलसी ने सीता को राम का अपूर्व सौन्दर्य सीता के कंकण के माध्यम से कराया है—

''राम को रूपु निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।''

विवाह के अवसर पर राम सीता की मांग में सिंदूर लगा रहे हैं। परिकल्पना बिंब के रूप में उस छवि को व्यक्त करने के लिए कवि कितना उदात्त उपमान प्रस्तुत करता है, मानो सर्प अमृत के लोक से चन्द्रमा को लाल-पराग कमल में भरकर प्रदान कर रहा हो—

''राम सीय सिर सेंदुर देहीं। शोभा कहि न जाति बिधि केहीं।।
आरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के।।

युगल-छवि के सौन्दर्य-चित्रण की एक परिस्थिति शिव-विवाह के अवसर पर प्रस्तुत होती है। तुलसी ने इस कथा को लिया है। पार्वती के माता-पिता में कुछ शुद्ध मानवीय भाव भी जागृत होते हैं, पर कहीं श्रृंगार का उद्रेक नहीं मिलता। तर्क यह है कि कहीं माता-पिता का श्रृंगार वर्णन भी किया जाता है। फिर भी श्रृंगार-केलि का एक संकेत दे दिया जाता है—

''जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी।।
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।।

इस प्रकार तुलसी ने सीता-राम और शिव-पार्वती के दिव्य युग्म को श्रृंगार की पकड़ से बाहर कर दिया। वस्तुतः यह वर्जनशील मर्यादा का प्रभाव ही है कि कुछ अपवादों को छोड़कर तुलसी नारी के रूप-सौंदर्य से परिचित

होते हुए भी अपरिचित जैसे ही बने रहते हैं। श्रृंगार की देहली तक तो तुलसी की कल्पना आई, पर श्रृंगार-भवन की अंतरंग क्रीड़ाओं के साथ उनका कोई संबंध स्थापित नहीं हो सका।

5. सौन्दय-चित्रण पर मर्यादा का अंकुश

सौन्दर्य-चित्रण का जो रूप हम तुलसी-काव्य में देखते हैं, आध्यात्मिक क्षेत्र में श्रृंगार की ऐसी एकांत प्रतिष्ठा संभवतः पहले कभी नहीं हुई थी। काव्यशास्त्रीय और कामशास्त्रीय परंपरा ने अपना सारभूत तत्त्व भक्तिमूलक श्रृंगार की सेवा में समर्पित कर दिया। कला, भक्ति और श्रृंगार की त्रयी ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावभूमि प्रस्तुत की।

गोस्वामी तुलसीदास जी कट्टर मर्यादावादी कवि हैं। नारी के रूप-सौन्दर्य को चित्रित करना उन्होंने 'लोक-मर्यादा' के अनुकूल नहीं समझा। ऐसा नहीं है कि तुलसी ने नारी के सौन्दर्य को अपने साहित्य में बिलकुल स्थान नहीं दिया। वास्तविकता तो यह है कि उचित प्रसंग आने पर तुलसी नारी के सौन्दर्य-चित्रण के लोभ को छोड़ नहीं पाते हैं, लेकिन मर्यादा-भाव के कारण वे काव्य में रूप के चित्रण को खुलकर अभिव्यक्त नहीं कर पाते। इस संबंध में **डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी** के विचार उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लिखा है कि–

''तुलसी में श्रृंगार और नारी-सौन्दर्य की कमी नहीं है। उनकी कविता में स्वाभाविक नारी-सौन्दर्य रीतिकालीन कवियों से बेहतर चित्रित है। लेकिन एक तो उनके यहाँ नारी-सौन्दर्य का उच्छृंखल चित्रण नहीं है, दूसरे उनके यहाँ नारी केवल रमणी नहीं है, वह कन्या, पत्नी और माँ तीनों है।''

श्रृंगार-विलास के क्रम में नायक द्वारा नायिका के श्रृंगार का प्रसंग भी मदिर-मादक माना जाता है। तुलसी ने राम के वनप्रवास के समय एक दिन राम के द्वारा सीता का पुष्प-श्रृंगार कराया है। श्रृंगार-विलास का यह प्रसंग कुछ मादक और रमणीय हो सकता था। लेकिन तुलसीदास की मर्यादावादी दृष्टि के कारण यह प्रसंग रीतिकालीन कवियों की तरह उच्छृंखल नहीं हो पाता। दृष्टव्य है–

''एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।''

यदि यहाँ 'सादर' शब्द नहीं होता, तो चित्र कुछ श्रृंगार-तरल हो जाता। इस शब्द की शीतलता ने जैसे भागवत तरलता को हिमखण्ड की सघनता में बदल दिया है। न भावोत्तेजन ही हो पाया और न श्रृंगार का भावन।

वस्तुतः तुलसी का व्यक्तित्त्व मर्यादावादी शिलाखंड की भाँति अविचल है। जिस कवि की वाणी 'प्राकृत-जन गुण-गान' में मूक रही, वह प्राकृत भावों की आध्यात्मिक अभिव्यंजना और भक्ति-साधना के क्षणों के साथ कैसे समन्वित कर सकती थी। रामचरितमानस में संभवतः ऐसा एक भी अवसर नहीं आया, जो श्रृंगार का उद्रेक करता है। पुष्प-वाटिका प्रसंग की उद्भावना कवि कितनी ललक के साथ करता है। वातावरण 'कंकण-किंकिणी' के मधु-क्वणन से गूँज कर उद्दीपक भी होने लगता है। सखि समाज से घिरी सीता का मन भी मूल भाव के ललित संकेतों से सिहरने लगता है। राम के व्यक्तित्त्व में भी कुछ लोच-लचक आने लगी। तुलसी के दमित श्रृंगार-भाव को जैसे उन्मुक्ति का द्वार मिलने लगा हो। इस अवसर पर राम के रूप-सौन्दर्य का चित्रण तो तुलसी ने किया है, पर वह श्रृंगार के उभार को सहायता नहीं दे पाता।

वास्तविकता यह है कि राम के सौन्दर्य को संतों, भक्तों और गुरुजनों का संदर्भ मिला। यह संदर्भ श्रृंगार की उद्भूति में असमर्थ रहता है। यही बात सीता के सौन्दर्य के संदर्भ में है। जनकपुर के स्त्री-पुरुष भी उस अनिंद्य सौन्दर्य की झाँकी पाते हैं। राह में ग्रामवासी और मार्गवासी भी खड़े हैं। उच्छलित-यौवना तरुणी के रूप में सीता को चित्रित करते हुए तुलसी की लेखनी रुक जाती है। इस संबंध में **डॉ. चन्द्रभान रावत** ने लिखा है कि ''स्त्रियों की और तरुणियों की कहीं भीड़ हैं, उनका सौंदर्य तुलसी की अलंकार-वृत्ति को उकसाती भी है, रूढ़ उपमान श्रृंखलाबद्ध भी हो जाते हैं, पर श्रृंगार का उद्रेक नहीं हो पाता।''

तुलसी की श्रृंगार-वर्णन की इसी वर्णनात्मक विशेषता को समझकर डा. चन्द्रभान रावत ने लिखा है कि–

''ऐसा प्रतीत होता है कि मानसकार श्रृंगार की परिस्थितियों को सप्रयास पंगु बनाये दे रहा है।''

विवाह के अवसर पर सीता-राम वधु और वर के रूप में पास-पास बैठे हैं। एक-दूसरे के रूप को निहारने की स्वाभाविक उत्कंठा दोनों के नेत्रों

को कुछ चंचल कर दे रही है। आँखों का मधु-विलास एक सीमा तक होता भी है। इतने में एक दार्शनिक रहस्य की दीवार पाठक और काव्यगत परिस्थिति को अलग-अलग कर देती है-

''सिय राम अवलोकहिं परस्पर, प्रेम काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर, प्रगट कवि कैसे करै।''

श्रृंगार पर इतना प्रतिबंध संभवतः तुलसी ने मानस के वातावरण को शुद्ध सात्त्विक रखने के कारण लगाया है। इसलिए सौन्दर्य-चित्रण और प्रेम की विशेषता को उद्घाटित करते हुए **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने लिखा है कि

''प्रेम और श्रृंगार का ऐसा वर्णन जो बिना किसी लज्जा और संकोच के सबके सामने पढ़ा जा सके, गोस्वामी जी का ही है।''

लेकिन यह भी सत्य है कि श्रृंगार-चित्रण में मर्यादा-भाव के अधिक दबाव ने कला के स्वाभाविक विलास को और मनुष्य-मन की सहज भावनाओं को काफी हद तक कुंठित भी किया है।

6. तुलसी के लिए नारी-सौंदर्य एक वर्जित क्षेत्र

प्रायः ऐसा मान लिया जाता है कि नारी-सौन्दर्य और रति- श्रृंगार तुलसी के निषिद्ध क्षेत्र हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। हाँ, दृष्टि-भेद और स्तर का अंतर है। उन्होंने नारी-सौन्दर्य को अश्लीलता के दोष से मुक्त रखने हेतु बड़ी सावधानी पूर्वक प्रयास किया। कृष्ण काव्यधारा का मर्यादाहीन स्वच्छंद प्रेम तुलसी की भक्ति-साधना का आदर्श नहीं बन सकता था। कृष्ण काव्यधारा में चित्रित नारी-सौन्दर्य, नारी के अंग-प्रत्यंगों का स्वच्छंद चित्रण अश्लीलता के दोष से युक्त दिखाई देता है। वहाँ नारी-सौन्दर्य का रूप कुछ ऐसा है कि उसे परिवार में पढ़ा-सुना नहीं जा सकता।

वस्तुतः तुलसी व्यवहारवादी हैं। जो बात व्यवहार में निभ न सके, तुलसी उसे सप्रयास या तो छोड़ देते हैं अथवा उसका रूप बदल देते हैं। इस संबंध में उन्होंने अपने मर्यादावादी दृष्टिकोण का पूर्ण परिचय दिया है। लेकिन यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तुलसी ने संत कवियों की भाँति नारी सौन्दर्य को उतनी उपेक्षा से नहीं देखा। जैसा कि पूर्व वर्णित किया जा चुका है कि तुलसी नारी-सौन्दर्य का प्रसंग आने पर कहीं भी उसकी झलक का चित्रण करने में नहीं चूकते हैं, लेकिन मर्यादा-तत्त्व के कारण उसे केलि-क्रीड़ाओं के वातावरण में उन्मुक्त नहीं छोड़ते।

सतियों में पार्वती और सीता अग्रगण्य हैं। ये दोनों देवियाँ हैं। श्रीसीता तुलसीदास जी के आराध्य देव की पत्नी हैं और पार्वती जगत् की माता हैं। मर्यादावादी तुलसी उनके श्रृंगार का वर्णन भला कैसे कर सकते हैं। लेकिन जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि तुलसी पार्वती और शिव के श्रृंगार और उनकी केलि-क्रिड़ाओं का संकेत फिर भी अपने काव्य में दे ही देते हैं। कवि ने सीता और पार्वती की सुंदरता का अंकन प्रतीकात्मक रूप में किया है। इस संबंध में डॉ. चन्द्रभान रावत का कथन है कि–

''सौन्दर्य की अपेक्षा इनकी पावनता ही कवि-कल्पना को अधिक विरमाती है।''

सीता सुन्दरता को भी सुंदर करने वाली है। मर्यादा-भाव के कारण तुलसी अपनी बुद्धि की सीमा स्वीकार कर सीता की सुंदरता का वर्णन करने में अपनी असमर्थता को साग्रह व्यक्त करते हैं–

''सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई।''

इस प्रकार माध्यम की अपूर्णता और वस्तुतगत अलौकिकता के कारण सौन्दर्य अनिर्वचनीय हो जाता है। कवि कहीं भी यह नहीं भूल पाता कि सीता और पार्वती दोनों ही जगज्जननी हैं। मातृत्व का सौन्दर्य, ममता आदि गुणों में ही देखा जा सकता है, माता के अंगों का सौन्दर्य अवर्ण्य ही है। तुलसी द्वारा सीता-पार्वती के सौन्दर्य-चित्रण की इसी तकनीक पर विचार कर डॉ. चन्द्रभान रावत ने कहा है कि ''प्रत्येक अंग और प्रत्येक उद्दीपक स्थिति में वह आंगिक सौन्दर्य की झाँइयाँ नहीं दे पाया है–न देने के लिए कटिबद्ध ही है।''

गीतावली में हिंडोले के उत्सव के अवसर पर तुलसी ने नारी-वृंद का सहज सौन्दर्य-चित्रण किया है। इस अवसर पर कुसुम्भी साड़ी और आभूषणों से सजी मृगनयनी बालाएँ सुंदर स्वर में सारंग और गौड़ राग में 'राम-सुयश' गाती हैं। झूलने वाली रमणियों की घुंघराली अलकें बिखर जाती हैं, हवा लगने से उनके वस्त्र उड़ने लगते हैं और आभूषण खिसक जाते हैं–

झुंड-झुंड झूलन चलीं गजगामिनी बर नारि।
कुसँभि चीर तनु सोहहीं, भूषण बिबिध सँवारि॥
पिकबयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड।
राम सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड

पट उड़त, भूषण खसत, हँसि-हँसि अपर सखी झुलावहीं॥

इस सौन्दर्य-चित्रण को देखकर प्रतीत होता है कि यह चित्रण कृष्ण की प्रियाओं का है। नारियों की भीड़ में तुलसी की प्रशमित सौन्दर्य-बोध की वृत्ति अवश्य जाग पड़ती है।

निष्कर्ष

गोस्वामी तुलसीदास वास्तविक सौन्दर्य के उपासक भक्त कवि हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में अमर्यादित होना, उन्हें मान्य नहीं हुआ। उनके आराध्य देव राम और सीता का प्रेम सघन-वन-कुंजों के एकांत वातावरण में पुष्पित, पल्लवित एवं विकसित नहीं होता। वे सदैव समाज और समाज की चार दीवारी के भीतर या आसपास रहते हैं, या तुलसी उन्हें इन्हीं परिस्थितियों में रखने के लिए कृत-संकल्प हैं। तुलसी की दृष्टि में नारी केवल भोग-विलास की वस्तु मात्र नहीं है। उनके समक्ष नारी के सदैव तीन रूप रहते हैं। वह आदर्श पुत्री, आदर्श पत्नी और आदर्श माता है। नारी के सौन्दर्य-चित्रण में उन्होंने उसके इन तीन रूपों को सदैव ध्यान में रखा। अतः उन्होंने अपने काव्य में नारी का सौन्दर्य-चित्रण मर्यादा की सीमा में रहकर ही किया। फिर भी निर्गुणिया सन्तों की अपेक्षा तुलसी ने नारी-सौन्दर्य को अधिक स्वीकारा है। नारी-वृंद के सौन्दर्य-चित्रण में तुलसी की शृंगार-भावना कुछ विकसित होती-सी जान पड़ती है, लेकिन मर्यादा की दीवार उन्हें आगे बढ़ने से रोक देती है। वस्तुतः जहाँ नारी-जीवन मर्यादित दिखाई पड़ता है, वहीं तुलसी को वास्तविक सौन्दर्य मिलता है। पुरुष-सौन्दर्य चित्रण में तुलसी ने राम के ही सौन्दर्य को स्थान दिया। राम के सौन्दर्य का निरूपण करने में भी तुलसी ने मर्यादा-भाव का पूर्णतः निर्वाह किया। राम के सौन्दर्य में उन्होंने शक्ति और शील का समन्वित रूप खड़ा किया है। तुलसी के राम में वस्तुतः शील की ही पराकाष्ठा है, जिसके सौन्दर्य और शक्ति दो आवरण हैं। सामूहिक नारी-सौन्दर्य के कुछ छींटे तो तुलसी-साहित्य में मिल जाते हैं, अन्यथा तुलसी शृंगार की लौकिक और अलौकिक परंपरा से कटे ही रहे। एक तो तुलसी ने जिस दिव्य युगल को चुना, वह शृंगार का आलंबन बन ही नहीं सकता था। दूसरे तुलसी की मर्यादावादी दृष्टि शृंगार के स्थूल पक्षों में नहीं रम सकती थी। इसलिए वे शृंगार के प्रसंगों की दिशा को या तो बदल ही देते हैं अथवा उस चर्चा को आगे बढ़ने से रोक देते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तुलसी का सौन्दर्य-चित्रण मर्यादा की छाया तले ही

पल्लवित हुआ है, वे सौन्दर्य की अंतरंग गहराइयों का खुलेरूप में चित्रण करने के पक्ष में नहीं थे।

लोक या जगत के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध, हमारी उस वैचारिक प्रक्रिया के परिणाम होते हैं, जिसके अन्तर्गत हम यह निर्णय लेते हैं कि अमुक वस्तु वा प्राणी अच्छा या बुरा है, हमें दुःख देता है या सुख देता है, हमारा हित करता है या अहित करता है, हमें संकट में डालता है या संकट से उबारता है। रागात्मक सम्बन्धों के इस प्रकार के निर्णयों तक पहुंचने की वैचारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत ही सौन्दर्य-बोध की सत्ता को देखा जा सकता है।

डॉ. रामविलास शर्मा अपने एक निबंध में कहते हैं कि-''सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता मनुष्य के व्यवहार के कारण ही नहीं है, उसकी वस्तुगत सत्ता स्वयं वस्तुओं में भी है, जिनके गुण पहचान कर हम उन्हें सुन्दर की संज्ञा देते हैं।''

वस्तुओं के गुणों की पहचान किस प्रकार होती हैं, इसे समझाते हुए वे लिखते हैं-'' गोस्वामी तुलसीदास ने गुरु से रामकथा सुनी, तब अचेत होने के कारण उनकी समझ में कम आयी। लेकिन गुरु ने उसे बार-बार सुनाया। उनकी चेतना विकसित हुई और रामकथा के गुणों का उन्हें पता लगा। लेकिन रामकथा में मुनष्य के लिये जो ज्ञान था या चरित्र-चित्रण और कथा की बुनावट थी, वह उसमें तुलसी के अचेत रहने पर भी थी और सचेत रहने पर भी रही। रामकथा के गुण तुलसी की इच्छा-अनिच्छा पर निर्भर न थे, वे रामकथा के वस्तुगत गुण थे, जिन्हें सचेत होने पर तुलसी ने पहचाना।''

डॉ. रामविलास शर्मा के उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम यह बात तो निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि किसी भी प्रकार का सौन्दर्य-बोध हमारे उन निर्णयों की देन होता है, जिनके अन्तर्गत हम वस्तुओं के गुणों की परख कर उन्हें आत्मसात करते हैं या उन्हें अपनी रागात्मक चेतना का विषय बना लेते हैं। लेकिन वस्तुओं के आत्मसात करने के पीछे हमारे पूर्वानुभव या निर्णय कार्य न कर करते हों, ऐसा कदापि नहीं होता। इसलिये सौन्दर्य की व्याख्या करते-करते 'सौन्दर्य की उपयोगिता' शीर्षक लेख में डॉ. रामविलास शर्मा एक ऐसी भारी चूक कर गये हैं, जिसके कारण सौन्दर्य का प्रश्न सुलझते-सुलझते ज्यों का त्यों उलझ गया। कुछ सुन्दर वस्तुओं की मिसालें देते हुए वे लिखते हैं कि- ''ताजमहल, तारों भरी रात, भादों की यमुना,

अवध के बाग, तुलसीकृत रामायण, देश-प्रेम, संसार में मानवमात्र का भाईचारा और शान्ति-ये सभी सुन्दर हैं। हो सकता है-कुछ लोगों को ताजमहल भयानक मालूम हो, तारों भरी रात में भूत दिखाई दें, भादों की यमुना देखकर मन में आत्महत्या के भाव उठते हों, अवध के बागों में आग लगा देने को जी चाहे, तुलसीकृत रामायण निहायत प्रतिक्रियावादी लगती हो, देश-प्रेम के नाम से चिढ़ हो और शान्ति तथा भाईचारे की बातों में कम्युनिज्म की गंध आती हो। ....ताजमहल अगर आपको भयावना लगता है तो शायद इसलिये कि एक बादशाह ने आप जैसे मुफलिसों की मोहब्बत का मजाक उड़ाया है।''

जिस असौन्दर्य-बोध का जिक्र डॉ. शर्मा उपरोक्त लेख में करते हैं, इस असौन्दर्य-बोध के कारण का पता लगाते-लगाते डॉ. शर्माजी ने 'शायद' लिखकर उन सारे तथ्यों को दरकिनार कर डाला, जिनके द्वारा सौन्दर्य-असौन्दर्य के प्रश्नों का समाधान हो सकता था। सौन्दर्य के प्रश्न का समाधान वस्तु की वस्तुगत सत्ता में खोजते-खोजते वे इस मूलभूत प्रश्न से ही किनारा कर गये कि जो वस्तुएं डॉ. रामविलास शर्मा को सुन्दर महसूस हो रही है, वही दूसरे व्यक्तियों को असौन्दर्य के बोध से आखिर क्यों सिक्त कर रही हैं? डॉक्टर साहब के लिये इसका समाधान चार कथित भले लोगों की गवाही या ऐसे मनुष्यों के अस्पतालों में भर्ती कराना, भूत निवारण के लिये 'हनुमान चालीसा' का पाठ, आत्म-हत्या से बचने के लिये अच्छे साहित्य का पठन-पाठन आदि भले ही रहा हो, लेकिन असौन्दर्य के प्रश्न का समाधान इस प्रकार की दलीलों से हल नहीं किया जा सकता। यदि इसका समाधान यही है तो तुलसी के काव्य की प्रतिक्रियावादी घोषित करने वाले, डॉ. रामविलास शर्मा को भी किसी पागलखाने में भर्ती होने की सलाह दे सकते हैं। सामंती वैभव के चितेरे नारी के मातृरूप, भगिनीरूप की सार्थकता को एक सिरफिरे आलोचक का अनर्गल प्रलाप बता सकते हैं। ऐसे में क्या इस तरह की उठापटक या अनर्गल बहस सौन्दर्य-असौन्दर्य की गुत्थी को सुलझा सकेगी? इसलिये आवश्यक यह है कि एक व्यक्ति को जो वस्तु गुणों के आधार पर सुन्दर दिखायी देती है, वही वस्तु दूसरे व्यक्ति में असौन्दर्य का बोध क्यों जाग्रत करती है। इस प्रश्न का समाधान हम तार्किक और वैज्ञानिक तरीके से करते हुए किसी सार्थक हल तक पहुंचें।

सौन्दर्यबोध की सत्ता को मनुष्य की रागात्मक चेतना की वैचारिक प्रक्रिया के निर्णीत मूल्यों के अन्तर्गत ही देखा जा सकता है। अतः सौन्दर्य की सत्ता भले ही वस्तु के गुणों में अन्तर्निहित हो लेकिन उसका बोध मनुष्य अपने आत्म अर्थात् रागात्मक चेतना के अनुसार ही करता है। इसलिये सौन्दर्य के प्रश्न को हल करने से पूर्व आवश्यक यह हो जाता है कि पहले मनुष्य या प्राणी के आत्म अर्थात् रागात्मक चेतना को परखा जाये।

दरअसल सौन्दर्य के प्रश्न का समाधान वस्तु की वस्तुगत सत्ता के साथ-साथ, मनुष्य की व्यक्तिगत सत्ता पर भी निर्भर है। इसलिये कोई भी वस्तु हमें सुन्दर तभी लगेगी या महसूस होगी जबकि-

1. उस वस्तु के व्यवहार अर्थात् उसकी गुणवत्ता से हमारे आत्म को कोई खतरा न हो।

2. वह वस्तु अपनी गुणवत्ता से हमारे आत्म को संतुष्टि भी प्रदान करे।

बात को स्पष्ट करने के लिये यदि हम डॉ. रामविलास शर्मा के ही तथ्यों को लें तो माना ताजमहल के वस्तुगत गुणों से किसी को भी खतरा महसूस नहीं होता, मतलब यह कि हमारे किसी भी प्रकार के इन्द्रिय-बोध में उसकी दुःखानुभूति सघन नहीं होती, लेकिन प्रख्यात शायर **साहिर लुधियानवी** को फिर भी ताजमहल असुन्दर दिखाई देता है तो इसका कारण उनका वह आत्म या रागात्मक चेतना है, जो जनता के खून-पसीने की कमाई से बने भव्य ताजमहल में, एक शहंशाह की अलोकतांत्रिक, जनघाती नीतियों का साक्षात्कार करती है और शायर को लगता है कि ताजमहल चाहे कितना भी भव्य और कथित रूप से सुन्दर क्यों न हो, लेकिन इसके निर्माण में एक बादशाह ने मात्र अपनी तुष्टि के लिये, मुल्क का पैसा स्वाहा कर डाला है। चूंकि साहिर साहब की रागात्मक चेतना का विषय मुल्क की गरीब और शोषित जनता है, इसलिये एक बादशाह की शोषक और जनघाती नीतियों उसे कैसे पसंद आ सकती हैं? और यही कारण है कि ताजमहल के 'लाख हसीन होने के बावजूद' उनके आत्म अर्थात् रागात्मक चेतना को इससे संन्तुष्टि नहीं मिलती। और वह कह उठते हैं कि "एक शहंशाह ने बनवा के हंसी ताजमहल, हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक।"

ठीक इसी प्रकार तारों भरी रात किसी को भुतहा लगती है तो इसका कारण उसके आत्म का असुरक्षा में पड़ना है। तुलसीकृत रामचरित मानस किसी को प्रतिक्रियावादी लगती है तो इसका एक सीधा-सीधा कारण

उसकी वह वैचारिक अवधारणाएं हैं, जो डॉ. रामविलास शर्मा की वैचारिक अवधारणाओं के एकदम विपरीत जाती हैं। अतः जो वस्तु डॉक्टर साहब को सुन्दर लगे, यह कोई आवश्यक नहीं कि वह किसी अन्य को भी सुन्दर लगे।

सौन्दर्य के विषय में इस सारी भूमिका को बांधने का उद्देश्य सिर्फ इतना-सा है कि वर्तमान कविता के रूप में तेवरी के सौन्दर्य-बोध को स्पष्ट करने में आत्म-सुरक्षा और आत्म-सन्तुष्टि जैसे दो तत्त्व किस प्रकार सौन्दर्य का विषय बनते हैं, इसे स्पष्ट करने के लिये वैज्ञानिक और तार्किक प्रयास किये जायें।

लेकिन सौन्दर्य के साथ चूंकि सत्य और शिव का पक्ष भी जुड़ा हुआ है, इसलिये वास्तविक और सत्योन्मुखी सौन्दर्य की प्रतीति तभी सम्भव है, जबकि कोई प्राणी अपने व्यवहार को पूरे लोक या मानवमंगल का विषय बनाये। व्यवहार का यह पक्ष ही सही अर्थों में वस्तुओं की वस्तुगत सत्ता का वास्तविक और सत्योन्मुखी सौन्दर्य होगा।

3

तुलसी की काव्य-कला और कवितावली

गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। तुलसी बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि थे। पूर्व मध्यकाल में मुख्य रूप से काव्य रचना की दो शैलियाँ प्रचलित थीं–प्रबंध और मुक्तक। तुलसी ने दोनों काव्य रूपों में रचना की। तुलसी ने मानस की रचना प्रबंध-शैली में की है और विनयपत्रिका, गीतावली, कृष्णगीतावली और कवितावली आदि की रचना मुक्तक–शैली में की है। गोस्वामी तुलसीदास के बारह ग्रन्थ प्रसिद्ध माने जाते हैं –रामचरितमानस, दोहावली, कवितावली, गीतावली, बिनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्ववती मंगल, जनकी मंगल, बरवैरामायण, वैराग्य संदीपिनी, कृष्णगीतावली और रामाज्ञा प्रश्नावली आदि।

कवितावली गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं में है। कवितावली में श्री रामचन्द्र के इतिहास का वर्णन कवित्त, चौपाई, सवैया आदि छंदों में किया गया है। रामचरितमानस के जैसे ही कवितावली में भी सात काण्ड हैं। ये छन्द ब्रजभाषा में लिखे गये हैं और इनकी रचना प्रायः उसी परिपाटी पर की गयी है, जिस परिपाटी पर रीति काल का अधिकतर रीति- मुक्त काव्य लिखा गया।

रचना काल

16वीं शताब्दी में रची गयी 'कवितावली' के अधिकतर छंद केशव की 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' के रचना - काल के आस - पास और बाद के है। जो छन्द उत्तरकाण्ड में आते हैं, उनमें भी तुलसीदास के कवि-जीवन के उत्तरार्द्ध की ही घटनाओं का उल्लेख हुआ है। कुछ छन्द तो कवि के जीवन के निरे अंत के ज्ञात होते हैं। इसलिए 'कवितावली' के छन्दों का रचना- काल संख्या 1655 से 1680 तक ज्ञात होता है।

कथा

कथा- सम्बन्धी छन्द 'गीतावली' के पदों की भाँति- वरन् उससे भी अधिक स्फुट ढंग से लिखे गये हैं। अरण्य - कांड का एक ही छन्द है, जिसमें हरिण के पीछे राम के जाने मात्र का उल्लेख है। किष्किन्धा काण्ड की कथा का एक ही छन्द नहीं है– जो एक छन्द किष्किन्धा काण्ड के शीर्षक के नीचे दिया भी गया है, वह वास्तव में सुन्दर काण्ड की कथा का है, क्योंकि उसमें हनुमान के समुद्र लाँघने के सिन्धु- तीर के एक भूधर पर उचक कर चढ़ने का उल्लेख हुआ है। रचना में उत्तरकाण्ड का कथा-विषयक कोई छन्द नहीं है। इसके उत्तरकाण्ड में प्रारम्भ में राम के गुण-गान के कुछ छन्द हैं और तदनंतर कुछ स्फुट विषयों के छन्दों के आने के बाद आत्म - निवेदन विषयक छन्द आते हैं। इन आत्म - निवेदन विषयक छन्दों में कवि ने प्रायः अपने जीवन के विभिन्न भागों पर दृष्टिपात किया है, जो उसके जीवनवृत के तथ्यों को स्थिर करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ छन्दों में कवि ने सीधे - सीधे भी अपने और समाज के अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। उत्तर काण्ड के ये समस्त छन्द अप्रतिम महत्त्व के हैं।

कवितावली का काव्य - शिल्प

'कवितावली' का काव्य - शिल्प मुक्तक काव्य का है। उक्तियों की विलक्षणता, अनुप्रासों की छटा, लयपूर्ण शब्दों की स्थापना कथा भाग के छन्दों में दर्शनीय है। आगे रीति काल में यह काव्य शैली बहुत लोकप्रिय हुई और इस प्रकार तुलसीदास इस काव्य शैली के प्रथम कवियों में से ज्ञात होते हैं फिर भी उनकी 'कवितावली' के छन्दों में पूरी प्रौढ़ता दिखाई पड़ती

है। कुछ छन्द तो मुक्तक शिल्प की दृष्टि से इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि उनसे सुन्दर छन्द पूरे रीति साहित्य में भी कदाचित ही मिल सकेंगे, यथा बालकाण्ड के प्रथम सात छन्द। इसका कारण कदाचित यह है कि इसके अधिकतर छन्द तुलसीदास के कवि जीवन के उत्तरार्द्ध के है। इसकी कथा पूर्ण रूप से 'रामचरित मानस' का अनुसरण करती है, यह तथ्य भी इसी अनुमान की पुष्टि करता है।

कवितावली का संकलन

'कवितावली' का संकलन कब हुआ होगा, यह विचारणीय है, क्योंकि रचना तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है। इसकी जो भी प्रतियाँ अभी तक मिली हैं, उनके छन्दों तथा छन्द- क्रम में अंतिम कुछ छन्दों को छोड़कर कोई अंतर नहीं मिलता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इसका संकलन कवि ने अपने जीवन काल में ही कर दिया था। उसके देहावसान के बाद जो कवित्त, सवैये और भी प्राप्त हुए उन्हें रचना के अंत में जिस प्रकार वे प्राप्त होते गये, लोगों ने जोड़ लिया। इसीलिए अंत के कुछ छन्दों के विषय में प्रतियों में यह अंतर मिलता है।

सात काण्ड

कवितावली (पद्य)-बाल काण्ड,
कवितावली (पद्य)-अयोध्या काण्ड,
कवितावली (पद्य)-अरण्य काण्ड,
कवितावली (पद्य)-किष्किन्धा काण्ड,
कवितावली (पद्य)-सुन्दर काण्ड,
कवितावली (पद्य)-लंका काण्ड और
कवितावली (पद्य)-उत्तर काण्ड।

कवि के पास भाषा एक ऐसा माध्यम होती है, जिसके द्वारा कवि अपने प्रतिपाद्य को शब्दायित करके पाठकों से तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ हो पाता है। काव्य में शब्द और अर्थ का समन्वय। शब्द-शक्ति को उभारता है, जिससे कवि कर्म प्रभावी होकर पाठक समूह तक पहुंचता है। शब्द संतुलन ही तुलसी के काव्य की विशेषता है। इसी विशेषता के कारण तुलसी के काव्य के अंतर बाह्य पक्ष अर्थात् अलंकार, चित्रात्मकता, गुण-व्रति

इत्यादि विशेषताओं को मुखर बनाता है। तुलसी के समय लोक की भाषा में काव्य रचना का सम्मान उस समय के पंडित वर्ग में नहीं था। तुलसी ने पंडित वर्ग को साधते हुए लोक भाषा को अपने काव्य का आधार बनाया। यद्यपि संस्कृत की उपेक्षा उन्होंने नहीं की। इसीलिए मानस, विनयपत्रिका आदि में अनेक श्लोक संस्कृत में हैं। सामर्थ्य होते हुए भी तुलसी ने काव्य भाषा के लिए लोकव्यवहार की भाषा को ही चुना। तुलसी पर जन दवाव भी हो सकता है, क्योकि संस्कृत भाषा का लोक में महत्त्व नगण्य था। हाँ, पुरोहित वर्ग में जरूर था। यही कारण है कि मध्यकाल में जनभाषा में रचना करने वाला कवि जितना सफल हुआ उतना संस्कृत में रचना करने वाला नहीं क्योकि संस्कृत को जनसमर्थन नहीं मिला था। इसलिए तुलसी ने 'गिरा ग्राम्य' भाषा को ज्यादा महत्त्व दिया। तुलसी का लक्ष्य लोक संग्रह था। मध्यकाल में तुलसी के समय तक काव्य भाषा के रूप में अवधी और ब्रजभाषा का प्रचलन था। तुलसी ने दोनों में काव्य रचना की। तुलसी की काव्य भाषा के सम्बन्ध में शुक्ल जी ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–"सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामी जी की है भाषा की सफाई और वाक्य रचना की निर्दोषता, जो हिंदी के और किसी कवि में नहीं पाई जाती। गठी हुई भाषा और किसी की नहीं है। सारी रचनाएँ इस बात का उदहारण हैं।" तुलसी ने मानस में रामकथा अवधी में कही है। कवितावली, गीतावली और विनयपत्रिका की रचना ब्रजभाषा में की।

कवितावली की भाषा में तुलसी ने लोक में प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। लोक में प्रचलित ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। कवितावली में तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कविता वली में डिंगल भाषा का भी प्रयोग मिलता है–

"डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र–सर।
ब्याल बधिर तेहि काल,बिकल दिगपाल चराचर।।
–बालकाण्ड –11

तुलसी की प्रवृत्ति रही है उन्होंने देसी–विदेशी भाषाओं के शब्दों का अपने काव्य में भरपूर उपयोग किया है, जिससे उनकी अभिव्यक्ति सशक्त हो सकी। तुलसी कवितावली में अरबी–फारसी भाषा के शब्दों का बखूबी प्रयोग करते हैं। जैसे अरबी के गुलाम, हराम, जाहिल आदि और फारसी के

दिल, दाम आदि। कवितावली के उत्तरकाण्ड में अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग बहुतायत हुआ है, जैसे–दगाबाज, गरीब, गुलाम, उम्रिदाराज, मसीत, निबाह, साहबी, मरद, खजाना आदि।

राम गरीबनेवाज भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेव्वाजी।

उत्तरकाण्ड –95

कवितावली की भाषा में मुहावरे और लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है। जैसे–धोबी कौ सो कूकर,न घर को न घाट को। भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, क्रिया, गुण आदि को हृदयगम्य बनाने में जब भाषा और उसकी शब्द शक्तियाँ जबाब दे जाती हैं। तब कवि अप्रस्तुत विधान की ओर उन्मुख होता है। इसे अलंकार विधान की संज्ञा भी दी जाती है। विभिन्न अलंकार वस्तुतःकथन की विभिन्न शैलियाँ हैं। शैली से तात्पर्य कथन प्रणाली या पद्धति से है। शब्दों की अर्थ सम्पदा को अक्षम मानकर जब कवि अप्रस्तुत विधान की ओर उन्मुख होता है तो वह भाषा से इतर मार्ग को ग्रहण करता है। अलंकार की दृष्टि से कवितावली महत्वपूर्ण रचना है। कवितावली में अलंकारों की सीमा को उन्होंने अच्छी तरह पहचाना है। उन्होंने अधिकांशतः भाव, क्रिया, रूप, गुण आदि का उत्कर्ष दिखाने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग किया है, मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं। अलंकारों में रमणीयता का गुण होना चाहिए। काव्य में अलंकार की स्थिति और उसके स्वरूप का विवेचन करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है- " वह कथन की एक युक्ति या वर्णन शैली मात्र है। वह वर्णन शैली सर्वत्र काव्यालंकार नहीं कहला सकती। उपमा को ही लीजिये, जिसका आधार होता है सादृश्य। यदि कहीं सादृश्य योजना का उद्देश्य बोध कराना मात्र है तो वह काव्यालंकार नहीं है।" शुक्ल जी के अनुसार तुलसी के यहाँ अलंकारो का प्रयोग निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ है–"भावों की उत्कर्ष व्यंजना में सहायक, वस्तुओं के रूप सौन्दर्य, भीषणत्व आदि का अनुभव तीव्र करने में सहायक। गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक। क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक।" कवितावली में प्रयुक्त अलंकारों का विवेचन इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर किया जायेगा। कवितावली में तुलसी ने भावों की रमणीय अभिव्यक्ति अनुप्रास अलंकार के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है, जिसमें सीता की थकान राम समझते हैं, जैसे–

पुरतें निकसी रघुवीर वधू,
धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की,
पुट सूख गए मधुराधर वै।

फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक,
पर्णकुटी करि हौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की,
अंखिया अति चारू चलीं जल च्वै।
अयोध्याकाण्ड –11

रूप का अनुभव मुख्यतः चार प्रकार से होता है–अनुरंजक, भयावह, आश्चर्यजनक या घृणा उत्पादक। यहाँ बिम्ब प्रतिबिम्ब का होना आवश्यक है। जैसे

बालधी बिसाल विकराल ज्वाल लाल मानौ,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।

कैधों ब्योम वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
वीररस वीर तरवारि सी उघारी है।

सुन्दरकाण्ड –5

इसमें उत्प्रेक्षा और संदेह का व्यवहार किया गया है। इधर-उधर घूमती हुई जलती हुई पूँछ तथा काल की जीभ और तलवार में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव (रूप सादृश्य) भी है तथा संहार करने और दाह करने में वस्तु-प्रतिवस्तु धर्म भी है। इस दृष्टि से यह गुण का अनुभव कराने में भी सहायक है। क्रिया का तीव्र अनुभव कराने के लिए कवितावली में तुलसी ने अनुप्रास की योजना की है। जैसे–?

छोनी में के छोनीपति,
छाजै जिन्हें छत्रछाया।

छोनी-छोनी छाए,
छिति आए निमिराज के। बालकाण्ड –8

तुलसीदास को रूपक अलंकार का बादशाह कहा जाता है। कवितावली में उन्होंने सांगरूपक का सुन्दर प्रयोग किया है किया है। उदहारण के लिए–

तुलसी तेहि औसर सोहैं सवै अवलोकति लोचनलाहू अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदे बिगसी मानो मंजुल कंजकली।
अयोध्याकाण्ड -22

कवितावली एक व्यंग्य काव्य है। जिसकी भाषा व्यंजना शक्ति से संपन्न है। कवितावली के व्यंग्य का सौन्दर्य और सामर्थ्य उसे एक महत्वपूर्ण कृति साबित करता है। कवितावली में व्यंग्य ध्वनि का प्रयोग सर्वत्र देखा जा सकता है। अभिधात्मक अर्थ की अपेक्षा संकेतित अर्थ अधिक रमणीय प्रतीत होता है। जहाँ कठिन प्रसंग आये अथवा अंतरद्वंद्व उपस्थित हुआ, तुलसी वहां व्यंग्य से ही काम लेते हैं। व्यंग्य के रूप में संचारी भावों की निबंधना कवितावली में देखने लायक है–

पुरतें निकसी रघुवीर वधु,धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की,पुट सूख गए मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनों अब केतिक,पर्णकुटी करि हौ कित ह्यवै।
तिय की लख आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारू चली जल च्वै।
अयोध्याकाण्ड -11

भाषा और अलंकार की भांति तुलसी ने छंद को भी काव्य का अनिवार्य उपकरण माना है। मानस के मंगलाचरण में उन्होंने 'वर्णनां अर्थसंधानां रसानाम' के साथ 'छंद सामपि' का उल्लेख कर छंद को काव्य का अनिवार्य अंग माना है। तुलसी ने काव्य के अनुरूप छंद का प्रयोग किया है। कवितावली मुक्तकों का संग्रह है। तुलसी के पूर्व कविता के लिए अनेक पद्धतियां प्रचलित थीं। इन्होने सभी पद्धतियों में रामकथा का गुणगान किया है। "वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति, गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्धति कबीरदास की नीति सम्बन्धी बानी की दोहा पद्धति, ईश्वरदास के दोहे-चौपाई वाली प्रबंध पद्धति आदि।" ये पांच मुख्य शैलियाँ उस वक्त प्रचलितं थीं। इनके साथ ब्रज और अवधी दो भाषाओं का व्यवहार होता था। तुलसी ने इन्हीं पांच शैलियों और दो भाषाओं को लेकर काव्य रचना की। कहीं-कहीं संस्कृत का भी प्रयोग किया है। चारणों और भाटों वाली कवित्त एवं छप्पय वाली शैली में उन्होंने कवितावली की रचना की है। कवितावली एक मुक्तक काव्य है। कवितावली के मुक्तक काव्य होने के कुछ प्रमाण मिलते हैं। प्रबंध के अनुसार कवितावली में नियमानुसार मंगलाचरण नहीं है। तुलसी ने मानस के प्रत्येक काण्ड में

मंगलाचरण दिया है, किन्तु कवितावली के आरंभ में मंगलाचरण का एक ही छंद है। यह रचना प्रबंध रूप में नहीं मुक्तक रूप में है। कथा में भी एक सूत्रता नहीं है। मुक्तक काव्य के स्वरूप स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने कहा है—"मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं होती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है। सहृदय में एक स्थायी प्रभाव गृहित रहता है। इससे तो रस के छीटे पड़ते हैं। जिससे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता।"

मुक्तक स्वतंत्र होते हुए भी अपने आप में स्वतः पूर्ण होते हैं। कवितावली का प्रत्येक छंद स्वतंत्र होते हुए भी अपने-आप में पूर्ण एवं भावाभिव्यंजन में पूर्णतः सफल है। छंदों की रमणीयता के लिए तुलसी ने भावों के अनुकूल छंदों का सन्निवेश किया है तथा लय और अन्त्यानुप्रास का ध्यान रखा है। वीरगाथा काल की चारणों की छप्पय शैली में कवितावली के छंदों की रचना की। छप्पय मात्रिक छंद है। छप्पय छः पंक्तियों वाला छंद है, जो रोला और उल्लाला के संयोग से बनता है। रोला में 24मात्राएं होती हैं तथा 11 और 13 पर यति हुआ करती है। छप्पय में पहली चार पंक्तियाँ रोला की रखी जातीं हैं और अंतिम दो पंक्तियाँ उल्लाला की रखी जातीं हैं। उल्लाला में 15 और 13 पर यति होती है। कवितावली में छप्पय का प्रयोग कवि ने भाषा व भाव के अनुरूप किया है, जिसमें कवि की निपुणता झलकती है। जैसे—

डिगतिउर्विअतिगुर्वि,सर्वपब्बैसमुद्रसर।
ब्याल बधिर तेहि काल,बिकल दिगपाल राचर।।
दिग्गयंद लरखरत,परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिमभानु,संघटित होत परस्पर।।

चौंके विरंचि संकर सहित,कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रम्हांड खण्ड कियो चडधुनि,जबहिंराम सिवधनु दल्यौ।।
बालकाण्ड -11

भाटों की कवित्त-सवैया शैली का भी प्रयोग कवितावली में रामकथा कहने के लिए तुलसी ने किया है। कवित्त को घनाक्षरी और मनहरण के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 31वर्ण होते हैं 16 व 15 पर यति हुआ

करती है। अंत में गुरु वर्ण का होना आवश्यक है। सवैया भी वार्णिक छंद है। वर्णों के आधारपर इसका निर्णय किया जाता है। मत्तगयन्द, दुर्मिल आदि इसके भेद हैं। कवितावली में नाना रसों का समावेश अत्यंत विसद रूप में मिलता। कवितावली में रासनुकूल शब्द योजना बड़ी सुंदर है। तुलसी ऐसी कोमल भाषा का प्रयोग करते हैं–

राम को रूप निहारत जानकि, कंकन के नगकी परछाहीं। . याते सबै सुधि भूलि गई,कर टेक रही,पल टारति नाहीं।।

बालकाण्ड –17

वे ही वीर और भयानक के प्रसंग में ऐसी शब्दावली का व्यवहार करते हैं–

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,धाए जातुधान,हनुमान लियो घेरिकै। महाबल पुंज कुंजरारि क्यों गरजि भट,जहाँ तहां पटके लंगूर फेरि फेरिकै।।

मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात, कहैं तुलसीस 'राखि राम की सौं' टेरिकै।

ठहर ठहर परे, कहरि कहरि उठै, हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरिकै।।

बालकाण्ड– 8

छप्पय,कवित्त,झूलना और सवैया के अतिरिक्त तुलसी ने संवाद शैली का बड़ी निपुणता से प्रयोग किया है। तुलसी के संवादों में नाटकीयता का सुंदर सन्निवेश हुआ है। लक्ष्मण के संवादों में वग्विदगता तथा नाटकीयता का सुंदर समन्वय हुआ है। केवट प्रसंग, रावण और अंगद संवाद, मंदोदरी संवाद और ग्राम वधुओं से संवाद में सजीवता, रोचकता और स्वाभाविकता देखने लायक होती है, जो पाठक को सम्मोहित करती है। जैसे–

पूँछत ग्रामबधू सिय सों,कहौ, सांवरे–से सखि! रावरे को हैं।
सुनि सुंदर बैन सुधारस–साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन,दे सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।
अयोध्याकाण्ड –22 –23

कवितावली में गुण,रीति और व्रतियों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उपनागरिका वृत्ति अत्यंत मधुर और कोमल वर्ण योजना में झलकती है। इसमें माधुर्य गुण भी रहता है। कवितावली में अनेक स्थलों पर माधुर्य गुण मिलता है। बालकाण्ड के प्रारंभिक पदों, अयोध्याकाण्ड में माधुर्य गुण विशेष रूप से देखा जा सकता है। श्रृंगार रस के प्रसंगों में तो अनेक बार माधुर्य गुण का

सहज समावेश मिलता है। कई स्थलों पर गतिशील सौन्दर्य–वर्णन भी माधुर्य गुण से परिपूर्ण है। जैसे–

दूलहश्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।
गावतिगीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरिबिप्र पढ़ाहीं।।

बालकाण्ड 17

परुषावृत्ति कठोर वर्ण योजना में अन्तर्निहित होती है। यह ओज गुण संपन्न होती है। जहाँ–जहाँ रौद्र,वीर और भयानक रसों का वर्णन हो वहां सहज हीं ओज गुण का समावेश हो जाता है। सुन्दरकाण्ड के लंकादहन प्रसंग में अधिक हुआ है–

कैंधों व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु।
वीररस बीर तरवारि सो उघारी है।
सुन्दरकाण्ड –5

कोमलवृति में न कठोर, न कोमल वर्णों की योजना होती है। उसमें प्रसाद गुण निहित है। कुछ स्थलों को छोड़कर कवितावली में सर्वत्र ही प्रसाद गुण को देखा जा सकता है।

तुलसी की काव्य कला के सम्बन्ध में रामचंद्र तिवारी ने लिखा है कि–"उन्हें काव्य शास्त्र के विविध अंगों का पूर्ण ज्ञान था किन्तु इनका प्रदर्शन उनका ध्येय नहीं था। उन्होंने वर्ण्य–विषय को दृष्टि में रखकर उसके अनुकूल ही छंदों का प्रयोग किया है। उनका एक मात्र उद्देश्य अभिव्यक्ति की पूर्णता है। भाषा, शैली, छंद, गुण, रीति, अलंकार, उक्ति–वैचित्र्र्य ये सभी उसकी पूर्णता में सहायक हैं।"

4

तुलसीदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय

भगवान राम के पावन चरित्र वर्णन से जहां तुलसी ने आत्मकल्याण किया वहां उन्होंने भारतीय समाज, संस्कृति एवं धर्म का वह उपकार किया है, जो आज तक भी हिन्दी का साहित्यकार नहीं कर सका। निःसंदेह ठीक ही है।

भारी सब सागर में उतारतै कौन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो॥

तुलसीदास जी ने सवा सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त किया था। यही कारण है कि इतने अधिक समृद्धिशाली साहित्य से हिन्दी की रिक्त प्रायः गोद को भरने में समर्थ हो सके। तुलसी का समस्त जीवन साहित्य-साधना एवं कष्टों का जीवन था। रचनायें इस प्रकार है:-

रामचरितमानस

संवत् 1631 का प्रारम्भ हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष,

सात महीने और छब्बीस दिन में यह अद्‌भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत् 1633 के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

गीतावली

गीतावली में गीतों का आधार विविध कांड का रामचरित ही रहा है। यह ग्रंथ रामचरितमानस की तरह व्यापक जनसम्पर्क में कम गया प्रतीत होता है। इसलिए इन गीतों में परिवर्तन-परिवर्द्धन दृष्टिगत नहीं होता है। गीतावली में गीतों के कथा - संदर्भ तुलसी की मति के अनुरूप हैं। इस दृष्टि से गीतावली का एक गीत लिया जा सकता है -

कैकेयी जौ लौं जियत रही।
तौ लौं बात मातु सों मुह भरि भरत न भूलि कही।।
मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँसन गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही।।
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही।।

इसमें भरत और राम के शील का उत्कर्ष तुलसीदास ने व्यक्त किया है। गीतावली के उत्तरकांड में मानस की कथा से अधिक विस्तार है। इसमें सीता का वाल्मीकि आश्रम में भेजा जाना वर्णित है। इस परित्याग का औचित्य निर्देश इन पंक्तियों में मिलता है -

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहीं और अनघ उपाउ।।
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भांति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ।।

पार्वती-मंगल

यह तुलसी की प्रामाणिक रचना प्रतीत होती है। इसकी काव्यात्मक प्रौढ़ता तुलसी सिद्धांत के अनुकूल है। कविता सरल, सुबोध, रोचक और सरस है। 'जगत मातु पितु संभु भवानी' की श्रृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। लोक रीति इतनी यथास्थिति से चित्रित हुई है कि यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भक्त्यात्मक भूमिका पर विरचित कथा काव्य है। व्यवहारों की

सुष्ठुता, प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यन्त संतुष्ट थे, इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है -

प्रेम पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि॥

श्रीकृष्ण गीतावली

श्रीकृष्ण गीतावली भी गोस्वामीजी की रचना है। श्रीकृष्ण-कथा के कतिपय प्रकरण गीतों के विषय हैं।

रामलला नहछू

यह संस्कार गीत है। इस गीत में कतिपय उल्लेख राम-विवाह की कथा से भिन्न हैं।

गोद लिहैं कौशल्या बैठि रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस, पर आंचर हो॥

वैराग्य संदीपनी

वैराग्य संदीपनी को **माताप्रसाद गुप्त** ने अप्रामाणिक माना है, पर **आचार्य चंद्रवली पांडे** इसे प्रामाणिक और तुलसी की आरंभिक रचना मानते हैं। कुछ और प्राचीन प्रतियों के उपलब्ध होने से ठोस प्रमाण मिल सकते हैं। संत महिमा वर्णन का पहला सोरठा पेश है -

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत।
जिन्हके विमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत॥

दोहावली

दोहावली में अधिकांश दोहे मानस के हैं। कवि ने चातक के व्याज से दोहों की एक लंबी श्रृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है। दोहावली दोहा संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान है। संभव है कुछ दोहे इसमें भी प्रक्षिप्त हों, पर रचना की अप्रामाणिकता असंदिग्ध है।

जानकी-मंगल

विद्वानों ने इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। पर इसमें भी क्षेपक है।

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाँटहि आँखि देखाइ कोप दारुन किए॥
राम कीन्ह परितोष रोस रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि॥
रघुबर भुजबल देख उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह॥

तुलसी के मानस के पूर्व वाल्मीकीय रामायण की कथा ही लोक प्रचलित थी। काशी के पंडितों से मानस को लेकर तुलसीदास का मतभेद और मानस की प्रति पर विश्वनाथ का हस्ताक्षर संबंधी जनश्रुति प्रसिद्ध है।

रामाज्ञा प्रश्न

यह ज्योतिष शास्त्रीय पद्धति का ग्रंथ है। दोहों, सप्तकों और सर्गों में विभक्त यह ग्रंथ रामकथा के विविध मंगल एवं अमंगलमय प्रसंगों की मिश्रित रचना है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व नगण्य है। सभी इसे तुलसीकृत मानते हैं। इसमें कथा- शृंखला का अभाव है और वाल्मीकीय रामायण के प्रसंगों का अनुवाद अनेक दोहों में है।

बरवै रामायण

विद्वानों ने इसे तुलसी की रचना घोषित किया है। शैली की दृष्टि से यह तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी खंडित प्रति ही ग्रंथावली में संपादित है।

हनुमान बाहुक

यह गोस्वामी जी की हनुमत-भक्ति संबंधी रचना है। पर यह एक स्वतंत्र रचना है। इसके सभी अंश प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास को राम प्यारे थे, राम की कथा प्यारी थी, राम का रूप प्यारा था और राम का स्वरूप प्यारा था। उनकी बुद्धि, राग, कल्पना और भावुकता पर राम की मर्यादा और लीला का आधिपत्य था। उनकी आंखों में

राम की छवि बसती थी। सब कुछ राम की पावन लीला में व्यक्त हुआ है, जो रामकाव्य की परम्परा की उच्चतम उपलब्धि है। निर्दिष्ट ग्रंथों में इसका एक रस प्रतिबिंब है।

कवितावली

कवितावली तुलसीदास की रचना है, पर सभा संस्करण अथवा अन्य संस्करणों में प्रकाशित यह रचना पूरी नहीं प्रतीत होती है। कवितावली एक प्रबंध रचना है। कथानक में अप्रासंगिकता एवं शिथिलता तुलसी की कला का कलंक कहा जायेगा।

विनयपत्रिका

तुलसीदास रचित यह ब्रज भाषा में रचित यह पत्रिका में विनय के पद है। विनयपत्रिका का एक नाम राम विनयावली भी है विनय पत्रिका में 21 रागों का प्रयोग हुआ है। विनय पत्रिका का प्रमुख रस शांतरस है। इस रस का स्थाई भाव निर्वेद होता है। विनय पत्रिका आध्यात्मिक जीवन को परिलक्षित करती है। इस में सम्मलित पदों की संख्या 280 है।

काव्यगत विशेषताएँ

भाव–तुलसी का काव्य लोक–कल्याण की चार पवित्र भावनाओं से प्रेरित है। सर्वप्रथम–भक्ति भावना, द्वितीय–समाजिक आदर्शो की स्थापना, तृतीय–धार्मिक समन्वय, चतुर्थ–दासता से मुक्ति का संदेश।

भक्ति–भावना

तुलसी की भक्ति अनन्य भाव को भक्ति थी। ये स्मार्त वैष्णव और विशिष्टाद्वैतवादी थे। राम उनके जीवन सर्वस्व है। अपने ईष्टदेव भगवान राम के पावन चरित्र, उनकी महानता और विशालता तथा अपनी दीनता और दास्य भाव का विशद एवं विस्तृत, कल्याणकारी एवं मनोहारी वर्णन किया है। तुलसी की अनन्यता इससे अधिक क्या हो सकती है कि जिस देवता से यदि कुछ माँगा भी तो यही माँगा कि राम मेरे मन में निवास करें–

'माँगत तुलसीदास कर जोरे, बसहिं राम सिय मानस मोरे' तुलसीदास की दीनता और अनन्यता अपने स्थान पर अद्वितीय है, कितना भी कठोर स्वामी क्यों न हो सेवक की इन बातों से जरूर पिघल जाएगा।

रावरे को दूसरो न द्वार राम दया धाम।
रावरी ही गति बले, विभव विहीन की।।

सामाजिक आदर्शों की स्थापना

तत्कालीन समाज की स्थिति अस्त-व्यस्त एवं अव्यवस्थित हो चुकी थी। तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अनुकरणीय आदर्श चरित्र समाज के आगे रखा। समाज को स्वस्थ एवं सुनियंत्रित बनाने के लिए राम के आदर्श चरित्र के माध्यम से समाज का नीति निर्देश एवं पथ-प्रदर्शन किया। लोक मंगल की भावना से ओत:प्रोत तुलसी का काव्य मानव-जीवन के अनन्त कर्तव्यों से भरा पड़ा है, जिससे समाज आज भी नियन्त्रित और अनुप्राणित हो रहा है।

धार्मिक समन्वय

तुलसी महान समन्वयवादी थे। विशृंखलित समाज में उस समय धर्म का स्वरूप विकृत होता जा रहा था। अनेकों वाद, सम्प्रदाय और मत मतान्तर पारस्परिक विद्वेष और घृणा फैला रहे थे। इस विद्वेष को दूर करने के लिए तुलसी ने अपने काव्य में बड़ा बुद्धिमतापूर्वक सभी को एक दूसरे से मिलाने का और पास लाने का सफल प्रयत्न किया।

दासता से मुक्ति का संदेश

विदेशी विजेताओं ने भारत में जमकर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। जन नायक के अभाव में जनता राह भूले राहगीर की भाँति भटक रही थी, मुक्ति का मार्ग दूर-दूर तक दिखाई न देता था। तुलसी ने इस अभाव की पूर्ति की। जनता को संगठन और सुसंगठित शक्ति का महान संदेश दिया।

भाषा

तुलसी की भाषा अवधी एवं ब्रज है। राम चरित मानस अवधी भाषा में तथा विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, गीतावली आदि ब्रज भाषा में लिखित काव्य है। इनकी दोनो भाषाएं भावों को प्रकट करने में पूर्णतया समर्थ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं अरबी

और फारसी के सरल शब्द भी पाए जाते है। शब्द चयन व्यवस्थित है। भाषा में अपूर्व प्रवाह है। भाषा ओज, प्रमाद और माधुर्य गुणों से युक्त है।

शैली

तुलसी ने अपने समय तक हिन्दी काव्य जगत् में प्रचलित समस्त शैलियों में विद्वता पूर्वक रचना करके सभी शैलियों का प्रतिनिधित्व किया है। भिन्न-भिन्न शैलियाँ तथा रचनाएँ इस प्रकार हैं।

1. चन्द की छप्पय शैली-कवितावली में,
2. कबीर की दोहा शैली-कवितावली में,
3. सूर की पद शैली-गीतावली तथा विनयपत्रिका में,
4. जायसी की चौपाई शैली-कवितावली में,
5. रहीम की बरवैशैली-बरवै रामायण में, और
6. मोहर शैली-ग्राम्य एवं लोकगीतों में।

रस, छन्द व अलंकार

महाकवि तुलसी के काव्य में सभी रसों का सफल एवं सुन्दर परिपाक हुआ है। परन्तु प्राधान्य करुण और शान्त रस का है। तुलसी का श्रृंगार अत्यन्त मर्यादित एवं शिष्ट है। संयोग श्रृंगार की एक झलक पात्र देखिए-

'राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाही,
याते सवैं सुध भूलि गई कर टेक रही पल टरति नाहीं॥'

छन्द योजना तुलसी की अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इन्होंने युग की प्रचलित सभी शैलियों एवं छन्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया था। परन्तु दोहा, चौपाई, कविता, सवैया तथा पद तुलसी को अधिक प्रिय थे।

तुलसी को अंलकारों की चिंता नहीं थी। इन्हें सच्चे भाव की आवश्यकता थी। इस पर भी जहाँ आप की दृष्टि जाएगी वहाँ आपको कोई न कोई अलंकार अवश्य मिल जाएगा। तुलसी के काव्य में अलंकार भावों के पीछे-पीछे सहायक बनकर चले है। फिर भी उपमा, रूपक, सांगरूपक, उत्प्रेक्षा आदि का स्वाभाविक एवं सफल प्रयोग दर्शनीय है।

5

श्री रामचरितमानस

श्री रामचरितमानस अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 16वीं सदी में रचित एक महाकाव्य है। इस ग्रन्थ को अवधी साहित्य (हिंदी साहित्य) की एक महान कृति माना जाता है। इसे सामान्यतः 'तुलसी रामायण' या 'तुलसीकृत रामायण' भी कहा जाता है। रामचरितमानस भारतीय संस्कृति में एक विशेष स्थान रखता है। रामचरितमानस की लोकप्रियता अद्वितीय है। उत्तर भारत में 'रामायण' के रूप में बहुत से लोगों द्वारा प्रतिदिन पढ़ा जाता है। शरद नवरात्रि में इसके सुन्दर काण्ड का पाठ पूरे नौ दिन किया जाता है। रामायण मण्डलों द्वारा मंगलवार और शनिवार को इसके सुन्दरकाण्ड का पाठ किया जाता है।

श्री रामचरित मानस के नायक श्रीराम हैं, जिनको एक मर्यादा पुरोषोत्तम के रूप में दर्शाया गया है, जोकि अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीहरि नारायण भगवान के अवतार हैं जबकि महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण में श्री राम को एक आदर्श चरित्र मानव के रूप में दिखाया गया है, जो सम्पूर्ण मानव समाज ये सिखाता है कि जीवन को किस प्रकार जिया तुलसी के प्रभु राम सर्वशक्तिमान होते हुए भी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। गोस्वामी जी ने रामचरित का अनुपम शैली में दोहों, चौपाइयों, सोरठों तथा छंद का आश्रय लेकर वर्णन किया है। गया महाकाव्य है, जैसा कि स्वयं गोस्वामी जी ने रामचरित मानस के बालकाण्ड में लिखा है कि उन्होंने रामचरित मानस की रचना का

आरम्भ अयोध्या में विक्रम संवत 1631 (1574 ईस्वी) को रामनवमी के दिन (मंगलवार) किया था। गीताप्रेस गोरखपुर के श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के अनुसार रामचरितमानस को लिखने में गोस्वामी तुलसीदास जी को 2 वर्ष 7 माह 26 दिन का समय लगा था और उन्होंने इसे संवत् 1633 (1576 ईस्वी) के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम विवाह के दिन पूर्ण किया था।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने श्री रामचन्द्र के निर्मल एवं विशद चरित्र का वर्णन किया है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत रामायण को रामचरितमानस का आधार माना जाता है। यद्यपि रामायण और रामचरितमानस दोनों में ही राम के चरित्र का वर्णन है, परंतु दोनों ही महाकाव्यों के रचने वाले कवियों की वर्णन शैली में उल्लेखनीय अन्तर है। जहाँ वाल्मीकि ने रामायण में राम को केवल एक सांसारिक व्यक्ति के रूप में दर्शाया है वहीं तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम को भगवान विष्णु का अवतार माना है। रामचरितमानस को तुलसीदास ने सात काण्डों में विभक्त किया है। इन सात काण्डों के नाम हैं–बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड (युद्धकाण्ड) और उत्तरकाण्ड। छन्दों की संख्या के अनुसार बालकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड क्रमशः सबसे बड़े और छोटे काण्ड हैं। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में अवधी के अलंकारों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है, विशेषकर अनुप्रास अलंकार का। रामचरितमानस पर प्रत्येक हिंदू की अनन्य आस्था है और इसे हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ माना जाता है।

संक्षिप्त मानस कथा

बात उस समय की है जब मनु और सतरूपा परमब्रह्म की तपस्या कर रहे थे। कई वर्ष तपस्या करने के बाद शंकरजी ने स्वयं पार्वती से कहा कि ब्रह्मा, विष्णु और मैं कई बार मनु सतरूपा के पास वर देने के लिये आये ('बिधि हरि हर तप देखि अपारा, मनु समीप आये बहु बारा') और कहा कि जो वर तुम माँगना चाहते हो माँग लोय पर मनु सतरूपा को तो पुत्र रूप में स्वयं परमब्रह्म को ही माँगना था, फिर ये कैसे उनसे यानी शंकर, ब्रह्मा और विष्णु से वर माँगते? हमारे प्रभु श्रीराम तो सर्वज्ञ हैं। वे भक्त के हृदय की अभिलाषा को स्वतः ही जान लेते हैं। जब 23 हजार वर्ष और बीत गये तो प्रभु श्रीराम के द्वारा आकाशवाणी होती है–

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी, गति अनन्य तापस नृप रानी।
माँगु माँगु बरु भइ नभ बानी, परम गँभीर कृपामृत सानी।।

इस आकाशवाणी को जब मनु सतरूपा सुनते हैं तो उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और जब स्वयं परमब्रह्म राम प्रकट होते हैं तो उनकी स्तुति करते हुए मनु और सतरूपा कहते हैं- 'सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू, बिधि हरि हर बंदित पद रेनू। सेवत सुलभ सकल सुखदायक, प्रणतपाल सचराचर नायक।।' अर्थात् जिनके चरणों की वन्दना विधि, हरि और हर यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही करते है, तथा जिनके स्वरूप की प्रशंसा सगुण और निर्गुण दोनों करते हैं– उनसे वे क्या वर माँगें? इस बात का उल्लेख करके तुलसीदास ने उन लोगों को भी राम की ही आराधना करने की सलाह दी है, जो केवल निराकार को ही परमब्रह्म मानते हैं।

भाषा-शैली

रामचरितमानस की भाषा के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई इसे अवधी मानता है तो कोई भोजपुरी। कुछ लोक मानस की भाषा अवधी और भोजपुरी की मिलीजुली भाषा मानते हैं। मानस की भाषा बुंदेली मानने वालों की संख्या भी कम नहीं।

गोस्वामी जी ने भाषा को नया स्वरूप दिया। यह अवधी नहीं अपितु वही भाषा थी जो प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश होते हुए, 15 दशकों तक समस्त भारत की साहित्यिक भाषा रही ब्रजभाषा के नए रूप मागधी, अर्धमागधी आदि से सम्मिश्र होकर आधुनिक हिन्दी की ओर बढ़ रही थी, जिसे 'भाखा' कहा गया एवं जो आधुनिक हिन्दी 'खड़ीबोली' का पूर्व रूप थी।

तुलसीदास 'ग्राम्य गिरा' के पक्षधर थे परन्तु वे जायसी की गँवारू भाषा अवधी के पक्षधर नहीं थे। तुलसीदास की तुलना में जायसी की अवधी अधिक शुद्ध है। स्वयं गोस्वामी जी के अन्य अनेक ग्रन्थ जैसे 'पार्वतीमंगल' तथा 'जानकीमंगल' अच्छी अवधी में हैं। गोस्वामी जी संस्कृत के भी विद्वान् थे, इसलिए संस्कृत व आधुनिक शुद्ध हिन्दी खड़ीबोली का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप में हुआ है।

चित्रकूट स्थित अन्तरराष्ट्रीय मानस अनुसंधान केन्द्र के प्रमुख स्वामी रामभद्राचार्य ने रामचरितमानस का सम्पादन किया है। स्वामी जी ने लिखा है कि रामचरितमानस के वर्तमान संस्करणों में कर्तृवाचक उकार शब्दों की

बहुलता हैं। उन्होंने इसे अवधी भाषा की प्रकृति के विरुद्ध बताया है। इसी प्रकार उन्होंने उकार को कर्मवाचक शब्द का चिन्ह मानना भी अवधी भाषा के विपरीत बताया है। स्वामीजी अनुनासिकों को विभक्ति को द्योतक मानने को भी असंगत बताते हैं– 'जब तें राम ब्याहि घर आये'। कुछ अपवादों को छोड़कर अनावश्यक उकारान्त कर्तृवाचक शब्दों के प्रयोग को स्वामी रामभद्राचार्य ने अवधी भाषा के विरुद्ध बताया है। स्वामी रामभद्रचार्य ने 'न्ह' के प्रयोग को भी अनुचित और अनावश्यक बताया है। उनके अनुसार नकार के साथ हकार जोड़ना ब्रजभाषा का प्रयोग है अवधी का नहीं। स्वामीजी के अनुसार मानस की उपलब्ध प्रतियों में तुम के स्थान पर 'तुम्ह' और 'तुम्हहि' शब्दों के जो प्रयोग मिलते हैं वे अवधी में नहीं होते । इसी प्रकार 'श' न तो प्राचीन अवधी की ध्वनि है और न ही आधुनिक अवधी की।

संक्षिप्त कथा

दक्षों से लंका को जीतकर राक्षसराज रावण वहाँ राज्य करने लगा। उसके अनाचारों–अत्याचारों से पृथ्वी त्रस्त हो गयी और वह देवताओं की शरण में गयी। इन सब ने मिलकर हरि की स्तुति की, जिसके उत्तर में आकाशवाणी हुई कि हरि दशरथ–कौशल्या के पुत्र राम के रूप में अयोध्या में अवतार ग्रहण करेंगे और राक्षसों का नाश कर भूमि–भार हरण करेंगे। इस आश्वासन के अनुसार चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमी को हरि ने कौशल्या के पुत्र के रूप में अवतार धारण किया। दशरथ की दो रानियाँ और थीं– कैकेयी और सुमित्रा। उनसे दशरथ के तीन और पुत्रों–भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने जन्म ग्रहण किया।

विश्वामित्र के आश्रम में राम

इस समय राक्षसों का अत्याचार उत्तर भारत में भी कुछ क्षेत्रों में प्रारम्भ हो गया था, जिसके कारण मुनि विश्वामित्र यज्ञ नहीं कर पा रहे थे। उन्हें जब यह ज्ञात हुआ कि दशरथ के पुत्र राम के रूप में हरि अवतरित हुए हैं, वे अयोध्या आये और जब राम बालक ही थे, उन्होंने राक्षसों के दमन के लिए दशरथ से राम की याचना की। राम तथा लक्ष्मण की सहायता से उन्होंने अपना यज्ञ पूरा किया। इन उपद्रवकारी राक्षसों में से एक सुबाहु था, जो मारा गया और दूसरा मारीच था, जो राम के बाणों से आहत होकर सौ

योजन की दूरी पर समुद्र के पार चला गया। जिस समय राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में रह रहे थे, मिथिला में धनुर्यज्ञ का आयोजन किया गया था, जिसके लिए मुनि को निमन्त्रण प्राप्त हुआ। अतः मुनि राम-लक्ष्मण को लेकर मिथिला गये। मिथिला के राजा जनक ने देश-विदेश के समस्त राजाओं को अपनी पुत्री सीता के स्वयंवर हेतु आमन्त्रित किया था। रावण और बाणासुर जैसे बलशाली राक्षस नरेश भी इस आमन्त्रण पर वहाँ गये थे किन्तु अपने को धनुर्यज्ञ के कार्य के लिए असमर्थ मानकर लौट चुके थे। दूसरे राजाओं ने सम्मिलित होकर भी शिव धनु को तोड़ने का प्रयत्न किया, किन्तु वे अकृत कार्य रहे। राम ने इसे सहज ही तोड़ दिया और सीता का वरण किया। विवाह के अवसर पर अयोध्या निमन्त्रण भेजा गया। दशरथ अपने शेष पुत्रों के साथ बारात लेकर मिथिला आये और विवाह के अनन्तर अपने चारों पुत्रों को लेकर अयोध्या लौटे।

कैकेयी और कोपभवन

दशरथ की अवस्था धीरे-धीरे ढलने लगी थी, इसलिए उन्होंने राम को अपना युवराज पद देना चाहा। संयोग से इस समय कैकेयी-पुत्र भरत सुमित्रा-पुत्र शत्रुघ्न के साथ ननिहाल गये हुए थे। कैकेयी की एक दासी मन्थरा को जब यह समाचार ज्ञात हुआ, उसने कैकेयी को सुनाया। पहले तो कैकेयी ने यह कहकर उसका अनुमोदन किया कि पिता के अनेक पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है, यह उसके राजकुल की परम्परा है, किन्तु मन्थरा के यह सुझाने पर कि भरत की अनुपस्थिति में जो यह आयोजन किया जा रहा है, उसमें कोई दुरभि-सन्धि है, कैकेयी ने उस आयोजन को विफल बनाने का निश्चय किया और कोप भवन में चली गयी। तदनन्तर उसने दशरथ से, उनके मनाने पर, दो वर देने के लिए वचन, एक से राम के लिए 14 वर्षों का वनवास और दूसरे से भरत के लिए युवराज पद माँग लिये। इनमें से प्रथम वचन के अनुसार राम ने वन के लिए प्रस्थान किया तो उनके साथ सीता और लक्ष्मण ने भी वन के लिए प्रस्थान किया।

कुछ ही दिनों बाद जब दशरथ ने राम के विरह में शरीर त्याग दिया, भरत ननिहाल से बुलाये गये और उन्हें अयोध्या का सिंहासन दिया गया, किन्तु भरत ने उसे स्वीकार नहीं किया और वे राम को वापस लाने के

लिए चित्रकूट जा पहुँचे, जहाँ राम उस समय निवास कर रहे थे, किन्तु राम ने लौटना स्वीकार न किया। भरत के अनुरोध पर उन्होंने अपनी चरण-पादुकाएँ उन्हें दे दीं, जिन्हें अयोध्या लाकर भरत ने सिंहासन पर रखा और वे राज्य का कार्य देखने लगे। चित्रकूट से चलकर राम दक्षिण के जंगलों की ओर बढ़े। जब वे पंचवटी में निवास कर रहे थे रावण की एक भगिनी शूर्पणखा एक मनोहर रूप धारण कर वहाँ आयी और राम के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उनसे विवाह का प्रस्ताव किया। राम ने जब इसे अस्वीकार किया तो उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। यह देखकर राम के संकेतों से लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। इस प्रकार कुरूप की हुई शूर्पणखा अपने भाइयों-खर और दूषण के पास गयी और उन्हें राम से युद्ध करने को प्रेरित किया। खर-दूषण ने अपनी सेना लेकर राम पर आक्रमण कर दिया किन्तु वे अपनी समस्त सेना के साथ युद्ध में मारे गये। तदनन्तर शूर्पणखा रावण के पास गयी और उसने उसे सारी घटना सुनायी। रावण ने मारीच की सहायता से, जिसे विश्वामित्र के आश्रम में राम ने युद्ध में आहत किया था, सीता का हरण किया, जिसके परिणामस्वरूप राम को रावण से युद्ध करना पड़ा।

राम और रावण युद्ध

इस परिस्थिति में राम ने किष्किन्धा के वानरों की सहायता ली और रावण पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के साथ रावण का भाई विभीषण भी आकर राम के साथ हो गया। राम ने यही से हनुमान और फिर अंगद नाम के वानर को रावण के पास दूत के रूप में अन्तिम बार सावधान करने के लिए भेजा कि वह सीता को लौटा दे, किन्तु रावण ने अपने अभिमान के बल से इसे स्वीकार नहीं किया और राम तथा रावण के दलों में युद्ध छिड़ गया। उस महायुद्ध में रावण तथा उसके बन्धु-बान्धव मारे गये। तदनन्तर लंका का राज्य उसके भाई विभीषण को देकर सीता को साथ लेकर राम और लक्ष्मण अयोध्या वापस आये। राम का राज्याभिषेक किया गया और दीर्घकाल तक उन्होंने प्रजारंजन करते हुए शासन किया। इस मूल कथा के पूर्व 'रामचरितमानस' में रावण के कुछ पूर्वभवों की तथा राम के कुछ पूर्ववर्ती अवतारों की कथाएँ हैं, जो संक्षेप में दी गयी है। कथा के अन्त में गरुड़ और काग भुशुण्डि का एक विस्तृत संवाद है, जिसमें अनेक प्रकार के आध्यात्मिक विषयों का विवेचन हुआ है। कथा के प्रारम्भ होने के

पूर्व शिव-चरित्र, शिव-पार्वती संवाद, याज्ञवलक्य-भारद्वाज संवाद तथा काग भुशुण्डि-गरुड़ संवाद के रूप में कथा की भूमिकाएँ हैं। और उनके भी पूर्व कवि की भूमिका और प्रस्तावना है।

रामचरितमानस

'चरित' की दृष्टि से यह रचना पर्याप्त सफल हुई है। इसमें राम के जीवन की समस्त घटनाएँ आवश्यक विस्तार के साथ एक पूर्वाकार की कथाओं से लेकर राम के राज्य-वर्णन तक कवि ने कोई भी प्रासंगिक कथा रचना में नहीं आने दी है। इस सम्बन्ध में यदि वाल्मीकीय तथा अन्य अधिकतर राम-कथा ग्रन्थों से 'रामचरितमानस' की तुलना की जाय तो तुलसीदास की विशेषता प्रमाणित होगी। अन्य रामकथा ग्रन्थों में बीच-बीच में कुछ प्रासंगिक कथाएँ देखकर अनेक क्षेपककारों ने 'रामचरितमानस' में प्रक्षिप्त प्रसंग रखे और कथाएँ मिलायीं, किन्तु राम-कथा के पाठकों ने उन्हें स्वीकार नहीं किया और वे रचना को मूल रूप में ही पढ़ते और उसका पारायण करते हैं। चरित-काव्यों की एक बड़ी विशेषता उनकी सहज और प्रयासहीन शैली मानी गयी है, और इस दृष्टि से 'मानस' एक अत्यन्त सफल चरित है। रचना भर में तुलसीदास ने कहीं भी अपना काव्य कौशल, अपना पाण्डित्य, अपनी बहुज्ञता आदि के प्रदर्शन का कोई प्रयास नहीं किया है। सर्वत्र वे अपने वर्ण्य विषय में इतने तन्मय रहे हैं कि उन्हें अपना ध्यान नहीं रहा। रचना को पढ़कर ऐसा लगता है कि राम के चरित ने ही उन्हें वह वाणी प्रदान की है, जिसके द्वारा वे सुन्दर कृति का निर्माण कर सके।

उत्कृष्ट महाकाव्य

'काव्य' की दृष्टि से 'रामचरितमानस' एक अति उत्कृष्ट महाकाव्य है। भारतीय साहित्य-शास्त्र में 'महाकाव्य' के जितने लक्षण दिये गये हैं, वे उसमें पूर्ण रूप से पाये जाते हैं।

कथा-प्रबन्ध का सर्गबद्ध होना, उच्चकुल सम्भूत धीरोदात्त नायक का होना, श्रृंगार, शान्त और वीर रसों में से किसी एक का उसका लक्ष्य होना आदि सभी लक्षण उसमें मिलते हैं। पाश्चात्य साहित्यालोचन में 'इपिक' की जो विभिन्न आवश्यकताएँ बतलायी गयी हैं, यथा- उसकी कथा का किसी गौरवपूर्ण अतीत से सम्बद्ध होना, अतिप्राकृत शक्तियों का उसकी कथा में

भाग लेना, कथा के अन्त में किन्हीं आदर्शों की विजय का चित्रित होना आदि, सभी 'रामचरितमानस' में पाई जाती हैं। इस प्रकार किसी भी दृष्टि से देखा जाय तो 'रामचरितमानस' एक अत्यन्त उत्कृष्ट महाकाव्य ठहरता है। मुख्यतः यही कारण है कि संसार की महान् कृतियों में इसे भी स्थान मिला है।

रामचरितमानस में छन्दों की संख्या

रामचरितमानस में विविध छन्दों की संख्या निम्नवत् है–

चौपाई–9388

दोहा–1172

सोरठा–87

श्लोक–47 (अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, वंशस्थ, उपजाति, प्रमाणिका, मालिनी, स्रग्धरा, रथोद्धता, भुजङ्गप्रयात, तोटक)

छन्द–208 (हरिगीतिका, चौपैया, त्रिभङ्गी, तोमर)

कुल 10902 (चौपाई, दोहा, सोरठा, श्लोक, छन्द)

तुलसीदास की भक्ति

तुलसीदास की भक्ति की अभिव्यक्ति भी इसमें अत्यन्त विशद रूप में हुई है। अपने आराध्य के सम्बन्ध में उन्होंने 'रामचरितमानस' और विनय-पत्रिका' में अनेक बार कहा है कि उनके राम का चरित्र ही ऐसा है कि जो एक बार उसे सुन लेता है, वह अनायास उनका भक्त हो जाता है। वास्तव में तुलसीदास ने अपने आराध्य के चरित्र की ऐसी ही कल्पना की है। यही कारण है कि इसने समस्त उत्तरी भारत पर सदियों से अपना अद्‌भुत प्रभाव डाल रखा है और यहाँ के आध्यात्मिक जीवन का निर्माण किया है। घर-घर में 'रामचरितमानस' का पाठ पिछली साढ़े तीन शताब्दियों से बराबर होता आ रहा है। और इसे एक धर्म ग्रन्थ के रूप में देखा जाता है। इसके आधार पर गाँव-गाँव में प्रतिवर्ष रामलीलाओं का भी आयोजन किया जाता है। फलतः जैसा विदेशी विद्वानों ने भी स्वीकार किया है, उत्तरी भारत का यह सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है और इसने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उच्चाशयता लाने में सफलता प्राप्त की है।

लोकप्रिय ग्रन्थ

यहाँ पर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि तुलसीदास ने राम तथा उनके भक्तों के चरित्र में ऐसी कौन-सी विलक्षणता उपस्थित की है, जिससे उनकी इस कृति को इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। तुलसीदास की इस रचना में अनेक दुर्लभ गुण हैं, किन्तु कदाचित अपने जिस महान् गुण के कारण इसने यह असाधारण सम्मान प्राप्त किया है, वह है ऐसी मानवता की कल्पना, जिसमें उदारता, क्षमा, त्याग, निर्वैरता, धैर्य और सहनशीलता आदि सामाजिक शिवत्व के गुण अपनी पराकाष्ठा के साथ मिलते हों और फिर भी जो अव्यावहारिक न हों। 'रामचरितमानस' के सर्वप्रमुख चरित्र-राम, भरत, सीता आदि इसी प्रकार के हैं। उदाहरण के लिए राम और कौशल्या के चरित्रों को देखते हैं-

'वाल्मीकि रामायण' में राम जब वनवास का दुःसंवाद सुनाने कौशल्या के पास आते हैं, वे कहते हैं— 'देवि, आप जानती नहीं हैं, आपके लिए, सीता के लिए और लक्ष्मण के लिए बड़ा भय आया है, इससे आप लोग दुःखी होंगे। अब मैं दण्डकारण्य जा रहा हूँ, इससे आप लोग दुखी होंगे। भोजन के निमित्त बैठने के लिए रखे गये इस आसन से मुझे क्या करना है? अब मेरे लिए कुशा आसन चाहिये, आसन नहीं। निर्जन वन में चौदह वर्षों तक निवास करूँगा। अब मैं कन्द मूल फल से जीविका चलाऊँगा। महाराज युवराज का पद भरत को दे रहे हैं और तपस्वी वेश में मुझे अरण्य भेज रहे हैं' ।

'अध्यात्म रामायण' में राम ने इस प्रसंग में कहा है, 'माता मुझे भोजन करने का समय नहीं है, क्योंकि आज मेरे लिए यह समय शीघ्र ही दण्डकारण्य जाने के लिए निश्चित किया गया है। मेरे सत्य-प्रतिज्ञ पिता ने माता कैकेयी को वर देकर भरत को राज्य और मुझे अति उत्तम वनवास दिया। वहाँ मुनि वेश में चौदह वर्ष रहकर मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें।'

'रामचरितमानस' में यह प्रसंग इस प्रकार है-

'मातृ वचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतः के फूला।।
सुख मकरन्द भरे श्रिय मूला। निरखि राम मन भंवरू न भूला।।
धरम धुरीन धरम गनि जानी। कहेउ मातृ सन अमृत वानी।।
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता।।
जनि सनेह बस डरपति मोरे। आबहुँ अम्ब अनुग्रह तोरे।।'

तुलनात्मक अध्ययन

यहाँ पर दर्शनीय यह है कि तुलसीदास 'वाल्मीकि-रामायण' के राम को ग्रहण न कर 'अध्यात्म रामायण' के राम को ग्रहण किया है। वाल्मीकि के राम में भरत की ओर से अपने स्नेही स्वजनों के सम्बन्ध में जो अनिष्ट की आशंका है, वह 'अध्यात्म रामायण' के राम में नहीं रह गयी है और तुलसीदास के राम में भी नहीं आने पायी है, किन्तु इसी प्रसंग में पिता की आज्ञा के प्रति लक्ष्मण के विद्रोह के शब्दों को सुनकर राम ने संसार की अनित्यता और देहादि से आत्मा की भिन्नता का एक लम्बा उपदेश दिया है , जिस पर उन्होंने माता से नित्य विचार करने के लिए अनुरोध किया है, 'हे मातः! तुम भी मेरे इस कथन पर नित्य विचार करना और मेरे फिर मिलने की प्रतीक्षा करती रहना। तुम्हें अधिक काल तक दुःख न होगा। कर्म-बन्धन में बँधे हुए जीवों का सदा एक ही साथ रहना-सहना नहीं हुआ करता, जैसे नदी के प्रवाह में पड़कर बहती हुई डोंगियाँ सदा साथ-साथ ही नहीं चलती'।

तुलसीदास जी भगवान राम, लक्ष्मण और हनुमान जी को रामचरितमानस का पाठ सुनाते हुए।

व्यावहारिकता

तुलसीदास इस अध्यात्मवाद की दुहाई न देकर अपने आदर्शवाद को अव्यावहारिक होने से बचा लेते हैं। वे राम को एक धर्म-निष्ठ नायक के रूप में ही चित्रित करते हैं, जो पिता की आज्ञा का पालन करना अपना एक परम पुनीत कर्तव्य समझता है, इसलिए उन्होंने कहा है–

'धरम धुरीन धरम गतिजानी।
कहेउ मातु सन अति मृदु बानी।।'

दूसरा प्रसंग

वनवास के दुःख संवाद को जब राम सीता को सुनाने जाते हैं,

'वाल्मीकीय रामायण' में वे कहते हैं– 'मैं निर्जन वन में जाने के लिए प्रस्तुत हुआ हूँ और तुमसे मिलने के लिए यहाँ आया हूँ। तुम भरत के

सामने मेरी प्रशंसा न करना, क्योंकि समृद्धिवान लोग दूसरों की स्तुति नहीं सह सकते, इसलिए भरत के सामने तुम मेरे गुणों का वर्णन न करना। भरत के आने पर तुम मुझे श्रेष्ठ न बतलाना, ऐसा करना भरत के प्रतिकूल आचरण कहा जायेगा और अनुकूल रहकर ही भरत के पास रहना सम्भव हो सकता है। परम्परागत राज्य राजा ने भरत को ही दिया है– तुमको चाहिये कि तुम उसे प्रसन्न रखो, क्योंकि वह राजा है'।

'अध्यात्म रामायण' में इस प्रसंग में राम ने इतना ही कहा है, हे शुभे! मैं शीघ्र ही उसका प्रबन्ध करने के लिए वहाँ जाऊँगा। मैं आज ही वन को जा रहा हूँ। तुम अपनी सासू के पास जाकर उनकी सेवा–शुश्रुषा में रहो। मैं झूठ नहीं बोलता।...हे अनघे! महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक कैकयी को वर देकर भरत को राज्य और मुझे वनवास दिया है। देवी कैकेयी ने मेरे लिए चौदह वर्ष तक वन में रहना माँगा था, सो सत्यवादी दयालु महाराज ने देना स्वीकार कर लिया है। अतः हे भामिनि! मैं वहाँ शीघ्र ही जाऊँगा, तुम इसमें किसी प्रकार का विघ्न न खड़ा करना।

'रामचरितमानस' में इस प्रकार सीता से विदा लेने गये हुए राम नहीं दिखलाये जाते हैं, इसमें सीता स्वयं कौशल्या के पास उस समय वनवास का समाचार सुनकर आ जाती हैं, जब राम कौशल्या से वन गमन की आज्ञा लेने के लिए आते हैं और सीता की राम के साथ वन जाने की इच्छा समझकर कौशल्या ही राम से उनकी इच्छा का निवेदन करती हैं। 'अध्यात्म रामायण' में ही भरत के प्रति किसी प्रकार की आशंका और सन्देह के भाव राम के मन में नहीं चित्रित किये गये, 'रामचरितमानस' में भी राम के उसी उदार व्यक्तित्त्व को अंकित किया गया है।

भरत प्रेम

तुलसीदास राम के चरित्र में भरत प्रेम का एक अद्‌भुत विकास करते हैं, जो अन्य राम–कथा ग्रन्थों में नहीं मिलता। उदाहरणार्थ–

चित्रकूट में राम के रहन–सहन का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

'जब–जब राम अवध सुधि करहीं। तब–तब बारि बिलोचन भरहीं।
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई।
कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय बिचारी।।'

भरत के आगमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण जब राम के अनिष्ट की आशंका से उनके विरुद्ध उत्तेजित हो उठते हैं, राम कहते हैं–

'कहीं तात तुम्ह नीति सुनाई। सबतें कठिन राजमद भाई।।
जो अँचवत मातहिं नृपतेई। नाहिंन साधु समाजिहिं सेई।।
सुनहु लषन भल भरत सरीखा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीषा।।
भरतहिं होई न राज मद, विधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ।
तिमिर तरून तरिनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई।।
गोपद जल बूड़ति घट जोनी। सहज क्षमा बरू छाड़इ छोनी।।
मसक फूँक मकु मेरू उड़ाई। होइ न नृप पद भरतहि भाई।।
लषन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना।।
सगुन क्षीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच विधाता।।
भरत हंस रवि बंस तड़ागा। जनमि लीन्ह गुन शेष विभागा।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उजियारी।।
कहत भरत सुन सील सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ।।

चित्रकूट में भरत की विनय सुनने के लिए किये गये वशिष्ठ के कथन पर राम कह उठते हैं–

'गुरु अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनन्द विसेषी।।
भरतहिं धरम धुरन्धर जानी। निज सेवक तन मानस बानी।।
बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला।।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सन भाई।।
जो गुरु पर अंबुज अनुरागी। ते लोक हूं वेदहुं बड़ भागी।।
लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई।।
भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई।।'

ये तीनों विस्तार मौलिक हैं और 'रामचरितमानस' के पूर्व किसी राम–कथा ग्रन्थ में नहीं मिलते। भरत के प्रति राम के प्रेम का यह विकास तुलसीदास की विशेषता है और पूरे 'रामचरितमानस' में उन्होंने इसका निर्वाह भली भांति किया है। भरत ननिहाल से लौटते हैं तो कौशल्या से उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ती हैं और उनके स्तनों से दूध की धारा बहने लगती है। राम–माता का यह चित्र 'अध्यात्म रामायण' में भी नहीं है, यद्यपि उसमें भरत के प्रति कौसल्या की वह संकीर्ण–हृदयता भी नहीं है, जो

'वाल्मीकि रामायण' में पायी जाती है। 'वाल्मीकि-रामायण' में तो कौशल्या भरत से कहती हैं, 'यह शत्रुहीन राज्य तुम को मिला, तुमने राज्य चाहा और वह तुम्हें मिला। कैकेयी ने बड़े ही निन्दित कर्म के द्वारा इस राज्य को राजा से पाया है। धन-धान्य से युक्त हाथी, घोड़ों और रथों से पूर्ण यह विशाल राज्य कैकेयी ने राजा से लेकर तुमको दे दिया है।' इस प्रकार अनेक कठोर वचनों से कौशल्या ने भरत का तिरस्कार किया, जिनसे वे घाव में सुई छेदने के समान पीड़ा से दुखी हुए।

बालकाण्ड

बालकाण्ड वाल्मीकि कृत रामायण और गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। अयोध्या नगरी में दशरथ नाम के राजा हुये जिनकी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्र नामक पत्नियाँ थीं। संतान प्राप्ति हेतु अयोध्यापति दशरथ ने अपने गुरु श्री वशिष्ठ की आज्ञा से पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया जिसे कि ऋंगी ऋषि ने सम्पन्न किया। भक्तिपूर्ण आहुतियाँ पाकर अग्निदेव प्रसन्न हुये और उन्होंने स्वयं प्रकट होकर राजा दशरथ को हविष्यपात्र (खीर, पायस) दिया जिसे कि उन्होंने अपनी तीनों पत्नियों में बाँट दिया। खीर के सेवन के परिणामस्वरूप कौशल्या के गर्भ से राम का, कैकेयी के गर्भ से भरत का तथा सुमित्र के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। सीता स्वंयवर (चित्रकार: रवी वर्मा) राजकुमारों के बड़े होने पर आश्रम की राक्षसों से रक्षा हेतु ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण को मांग कर अपने साथ ले गये। राम ने ताड़का और सुबाहु जैसे राक्षसों को मार डाला और मारीच को बिना फल वाले बाण से मार कर समुद्र के पार भेज दिया। उधर लक्ष्मण ने राक्षसों की सारी सेना का संहार कर डाला। धनुषयज्ञ हेतु राजा जनक के निमंत्रण मिलने पर विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ उनकी नगरी मिथिला (जनकपुर) आ गये। रास्ते में राम ने गौतम मुनि की स्त्री अहल्या का उद्धार किया। मिथिला में राजा जनक की पुत्री सीता जिन्हें कि जानकी के नाम से भी जाना जाता है, का स्वयंवर का भी आयोजन था जहाँ कि जनकप्रतिज्ञा के अनुसार शिवधनुष को तोड़ कर राम ने सीता से विवाह किया। राम और सीता के विवाह के साथ ही साथ गुरु वशिष्ठ ने भरत का माण्डवी से, लक्ष्मण का उर्मिला से और शत्रुघ्न का श्रुतकीर्ति से करवा दिया।

भारत की संस्कृति

कृष्णा के रूप में नृत्य करते है भारत उपमहाद्वीप की क्षेत्रीय सांस्कृतिक सीमाओं और क्षेत्रों की स्थिरता और ऐतिहासिक स्थायित्व को प्रदर्शित करता हुआ मानचित्र भारत की संस्कृति बहुआयामी है, जिसमें भारत का महान इतिहास, विलक्षण भूगोल और सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान बनी और आगे चलकर वैदिक युग में विकसित हुई, बौद्ध धर्म एवं स्वर्ण युग की शुरुआत और उसके अस्तगमन के साथ फली–फूली अपनी खुद की प्राचीन विरासत शामिल हैं। इसके साथ ही पड़ोसी देशों के रिवाज, परम्पराओं और विचारों का भी इसमें समावेश है। पिछली पाँच सहस्राब्दियों से अधिक समय से भारत के रीति–रिवाज, भाषाएँ, प्रथाएँ और परंपराएँ इसके एक–दूसरे से परस्पर संबंधों में महान विविधताओं का एक अद्वितीय उदाहरण देती हैं। भारत कई धार्मिक प्रणालियों, जैसे कि हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म जैसे धर्मों का जनक है। इस मिश्रण से भारत में उत्पन्न हुए विभिन्न धर्म और परम्पराओं ने विश्व के अलग–अलग हिस्सों को भी बहुत प्रभावित किया है।

अयोध्याकाण्ड

अयोध्याकाण्ड वाल्मीकि कृत रामायण और गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। राम के विवाह के कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करना चाहा। इस पर देवता लोगों को चिंता हुई कि राम को राज्य मिल जाने पर रावण का वध असम्भव हो जायेगा। व्याकुल होकर उन्होंने देवी सरस्वती से किसी प्रकार के उपाय करने की प्रार्थना की। सरस्वती नें मन्थरा, जो कि कैकेयी की दासी थी, की बुद्धि को फेर दिया। मन्थरा की सलाह से कैकेयी कोपभवन में चली गई। दशरथ जब मनाने आये तो कैकेयी ने उनसे वरदान मांगे कि भरत को राजा बनाया जाये और राम को चौदह वर्षों के लिये वनवास में भेज दिया जाये। राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वन चले गये। ऋृंगवेरपुर में निषादराज गुह ने तीनों की बहुत सेवा की। कुछ आनाकानी करने के बाद केवट ने तीनों को गंगा नदी के पार उताराद्य प्रयाग पहुँच कर राम ने भरद्वाज मुनि से भेंट की। वहाँ से राम यमुना स्नान करते हुये

वाल्मीकि ऋषि के आश्रम पहुँचे। वाल्मीकि से हुई मन्त्रणा के अनुसार राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट में निवास करने लगे। तंउ ब्तवेमे ैतलन अयोध्या में पुत्र के वियोग के कारण दशरथ का स्वर्गवास हो गया। वशिष्ठ ने भरत और शत्रुन को उनके ननिहाल से बुलवा लिया। वापस आने पर भरत ने अपनी माता कैकेयी की, उसकी कुटिलता के लिये, बहुत भर्तस्ना की और गुरुजनों के आज्ञानुसार दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया कर दिया। भरत ने अयोध्या के राज्य को अस्वीकार कर दिया और राम को मना कर वापस लाने के लिये समस्त स्नेहीजनों के साथ चित्रकूट चले गये। कैकेयी को भी अपने किये पर अत्यंत पश्चाताप हुआ। सीता के माता-पिता सुनयना एवं जनक भी चित्रकूट पहुँचे। भरत तथा अन्य सभी लोगों ने राम के वापस अयोध्या जाकर राज्य करने का प्रस्ताव रखा जिसे कि राम ने, पिता की आज्ञा पालन करने और रघुवंश की रीति निभाने के लिये, अमान्य कर दिया। भरत अपने स्नेही जनों के साथ राम की पादुका को साथ लेकर वापस अयोध्या आ गये। उन्होंने राम की पादुका को राज सिंहासन पर विराजित कर दिया स्वयं नन्दिग्राम में निवास करने लगे।

अरण्यकाण्ड

अरण्यकाण्ड वाल्मीकि कृत रामायण और गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। कुछ काल के पश्चात राम ने चित्रकूट से प्रयाण किया तथा वे अत्रि ऋषि के आश्रम पहुँचे। अत्रि ने राम की स्तुति की और उनकी पत्नी अनसूया ने सीता को पातिव्रत धर्म के मर्म समझाये। वहाँ से फिर राम ने आगे प्रस्थान किया और शरभंग मुनि से भेंट की। शरभंग मुनि केवल राम के दर्शन की कामना से वहाँ निवास कर रहे थे, अतः राम के दर्शनों की अपनी अभिलाषा पूर्ण हो जाने से योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और ब्रह्मलोक को गमन किया। और आगे बढ़ने पर राम को स्थान-स्थान पर हड्डियों के ढेर दिखाई पड़े, जिनके विषय में मुनियों ने राम को बताया कि राक्षसों ने अनेक मुनियों को खा डाला है और उन्हीं मुनियों की हड्डियाँ हैं। इस पर राम ने प्रतिज्ञा की कि वे समस्त राक्षसों का वध करके पृथ्वी को राक्षस विहीन कर देंगे। राम और आगे बढ़े और पथ में सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि ऋषियों से भेंट करते हुये दण्डक वन में प्रवेश किया जहाँ पर उनकी मुलाकात जटायु से हुई। राम

ने पंचवटी को अपना निवास स्थान बनाया। पंचवटी में रावण की बहन शूर्पणखा ने आकर राम से प्रणय निवेदन–किया। राम ने यह कह कर कि वे अपनी पत्नी के साथ हैं और उनका छोटा भाई अकेला है उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मण ने उसके प्रणय–निवेदन को अस्वीकार करते हुये शत्रु की बहन जान कर उसके नाक और कान काट लिये। शूर्पणखा ने खर–दूषण से सहायता की मांग की और वह अपनी सेना के साथ लड़ने के लिये आ गया। लड़ाई में राम ने खर–दूषण और उसकी सेना का संहार कर डाला। शूर्पणखा ने जाकर अपने भाई रावण से शिकायत की। रावण ने बदला लेने के लिये मारीच को स्वर्णमृग बना कर भेजा जिसकी छाल की मांग सीता ने राम से की। लक्ष्मण को सीता के रक्षा की आज्ञा दे कर राम स्वर्णमृग रूपी मारीच को मारने के लिये उसके पीछे चले गये। मारीच के हाथों मारा गया पर मरते मरते मारीच ने राम की आवाज बना कर 'हा लक्ष्मण' का क्रन्दन किया जिसे सुन कर सीता ने आशंकावश होकर लक्ष्मण को राम के पास भेज दिया। लक्ष्मण के जाने के बाद अकेली सीता का रावण ने छलपूर्वक हरण कर लिया और अपने साथ लंका ले गया। रास्ते में जटायु ने सीता को बचाने के लिये रावण से युद्ध किया और रावण ने उसके पंख काटकर उसे अधमरा कर दिया। सीता को न पा कर राम अत्यंत दुखी हुये और विलाप करने लगे। रास्ते में जटायु से भेंट होने पर उसने राम को रावण के द्वारा अपनी दुर्दशा होने व सीता को हर कर दक्षिण दिशा की ओर ले जाने की बात बताई। ये सब बताने के बाद जटायु ने अपने प्राण त्याग दिये और राम उसका अंतिम संस्कार करके सीता की खोज में सघन वन के भीतर आगे बढ़े। रास्ते में राम ने दुर्वासा के शाप के कारण राक्षस बने गन्धर्व कबन्ध का वध करके उसका उद्धार किया और शबरी के आश्रम जा पहुँचे जहाँ पर कि उसके द्वारा दिये गये झूठे बेरों को उसके भक्ति के वश में होकर खाया। इस प्रकार राम सीता की खोज में सघन वन के अंदर आगे बढ़ते गये।

लंकाकाण्ड

लंका जाने के लिए रामसेतु का निर्माण करते हुई वानर सेना लंकाकाण्ड वाल्मीकि कृत रामायण और गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। जाम्बवन्त के आदेश

से नल–नील दोनों भाइयों ने वानर सेना की सहायता से समुद्र पर पुल बांध दिया। श्री राम ने श्री रामेश्वर की स्थापना करके भगवान शंकर की पूजा की और सेना सहित समुद्र के पार उतर गये। समुद्र के पार जाकर राम ने डेरा डाला। पुल बंध जाने और राम के समुद्र के पार उतर जाने के समाचार से रावण मन में अत्यंत व्याकुल हुआ। मन्दोदरी के राम से बैर न लेने के लिये समझाने पर भी रावण का अहंकार नहीं गया। इधर राम अपनी वानरसेना के साथ सुबेल पर्वत पर निवास करने लगे। अंगद राम के दूत बन कर लंका में रावण के पास गये और उसे राम के शरण में आने का संदेश दिया किन्तु रावण ने नहीं माना। शांति के सारे प्रयास असफल हो जाने पर युद्ध आरम्भ हो गया। लक्ष्मण और मेघनाद के मध्य घोर युद्ध हुआ। शक्तिबाण के वार से लक्ष्मण मूर्छित हो गये। उनके उपचार के लिये हनुमान सुषेण वैद्य को ले आये और संजीवनी लाने के लिये चले गये। गुप्तचर से समाचार मिलने पर रावण ने हनुमान के कार्य में बाधा के लिये कालनेमि को भेजा जिसका हनुमान ने वध कर दिया। औषधि की पहचान न होने के कारण हनुमान पूरे पर्वत को ही उठा कर वापस चले। मार्ग में हनुमान को राक्षस होने के सन्देह में भरत ने बाण मार कर मूर्छित कर दिया परन्तु यथार्थ जानने पर अपने बाण पर बिठा कर वापस लंका भेज दिया। इधर औषधि आने में विलम्ब देख कर राम प्रलाप करने लगे। सही समय पर हनुमान औषधि लेकर आ गये और सुषेण के उपचार से लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। बालासाहेब पंत प्रतिनिधि द्वारा चित्र जिसमे रावण वध दर्शाया गया है रावण ने युद्ध के लिये कुम्भकर्ण को जगाया। कुम्भकर्ण ने भी राम के शरण में जाने की असफल मन्त्रणा दी। युद्ध में कुम्भकर्ण ने राम के हाथों परमगति प्राप्त की। लक्ष्मण ने मेघनाद से युद्ध करके उसका वध कर दिया। राम और रावण के मध्य अनेकों घोर युद्ध हुये और अन्त में रावण राम के हाथों मारा गया। विभीषण को लंका का राज्य सौंप कर राम सीता और लक्ष्मण के साथ पुष्पकविमान पर चढ़ कर अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।

सुन्दरकाण्ड

सुंदरकाण्ड मूलतः वाल्मीकि कृत रामायण का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस तथा अन्य

भाषाओं के रामायण में भी सुन्दरकाण्ड उपस्थित है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान द्वारा किये गये महान कार्यों का वर्णन है। रामायण पाठ में सुन्दरकाण्ड के पाठ का विशेष महत्व माना जाता है। सुंदरकाण्ड में हनुमान का लंका प्रस्थान, लंका दहन से लंका से वापसी तक के घटनाक्रम आते हैं। इस सोपान के मुख्य घटनाक्रम है–हनुमानजी का लंका की ओर प्रस्थान, विभीषण से भेंट, सीता से भेंट करके उन्हें श्री राम की मुद्रिका देना, अक्षय कुमार का वध, लंका दहन और लंका से वापसी। रामायण में सुंदरकांड की कथा सबसे अलग है। संपूर्ण रामायण कथा श्रीराम के गुणों और उनके पुरुषार्थ को दर्शाती है, किन्तु सुंदरकांड एकमात्र ऐसा अध्याय है, जो सिर्फ हनुमानजी की शक्ति और विजय का कांड है।

किष्किन्धाकाण्ड

किष्किन्धाकाण्ड वाल्मीकि कृत रामायण और गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट आ गये। उस पर्वत पर अपने मंत्रियों सहित सुग्रीव रहता था। सुग्रीव ने, इस आशंका में कि कहीं बालि ने उसे मारने के लिये उन दोनों वीरों को न भेजा हो, हनुमान को राम और लक्ष्मण के विषय में जानकारी लेने के लिये ब्राह्मण के रूप में भेजा। यह जानने के बाद कि उन्हें बालि ने नहीं भेजा है हनुमान ने राम और सुग्रीव में मित्रता करवा दी। सुग्रीव ने राम को सान्त्वना दी कि जानकी जी मिल जायेंगीं और उन्हें खोजने में वह सहायता देगा साथ ही अपने भाई बालि के अपने ऊपर किये गये अत्याचार के विषय में बताया। राम ने बालि का वध कर के सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य तथा बालि के पुत्र अंगद को युवराज का पद दे दिया। राज्य प्राप्ति के बाद सुग्रीव विलास में लिप्त हो गया और वर्षा तथा शरद् ऋतु व्यतीत हो गई। राम के नाराजगी पर सुग्रीव ने वानरों को सीता की खोज के लिये भेजा। सीता की खोज में गये वानरों को एक गुफा में एक तपस्विनी के दर्शन हुये। तपस्विनी ने खोज दल को योगशक्ति से समुद्रतट पर पहुँचा दिया जहाँ पर उनकी भेंट सम्पाती से हुई। सम्पाती ने वानरों को बताया कि रावण ने सीता को लंका अशोकवाटिका में रखा है। जाम्बवन्त ने हनुमान को समुद्र लांघने के लिये उत्साहित किया। .

उत्तरकाण्ड

उत्तरकाण्ड वाल्मीकि कृत रामायण और गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस का एक भाग (काण्ड या सोपान) है। उत्तरकाण्ड राम कथा का उपसंहार है। सीता, लक्ष्मण और समस्त वानर सेना के साथ राम अयोध्या वापस पहुँचे। राम का भव्य स्वागत हुआ, भरत के साथ सर्वजनों में आनन्द व्याप्त हो गया। वेदों और शिव की स्तुति के साथ राम का राज्याभिषेक हुआ। वानरों की विदाई दी गई। राम ने प्रजा को उपदेश दिया और प्रजा ने कृतज्ञता प्रकट की। चारों भाइयों के दो दो पुत्र हुये। रामराज्य एक आदर्श बन गया।

रामचरितमानस की लोकप्रियता

इसी प्रकार भरत, सीता, कैकेयी और कथा के अन्य प्रमुख पात्रों में भी तुलसीदास ने ऐसे सुधार किये हैं कि वे सर्वथा तुलसीदास के हो गये हैं। इन चरित्रों में मानवता का जो निष्कलुष किन्तु व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया गया है, वह न केवल तत्कालीन साहित्य में नहीं आया, तुलसी के पूर्व राम-साहित्य में भी नहीं दिखाई पड़ा। कदाचित इसलिए तुलसीदास के 'रामचरितमानस' ने वह लोकप्रियता प्राप्त की, जो तब से आज तक किसी अन्य कृति को नहीं प्राप्त हो सकी। भविष्य में भी इसकी लोकप्रियता में अधिक अन्तर न आयेगा, दृढ़तापूर्वक यह कहना तो किसी के लिए भी असम्भव होगा किन्तु जिस समय तक मानव जाति आदर्शों और जीवन-मूल्यों में विश्वास रखेगी, 'रामचरितमानस' को सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा, यह कहने के लिए कदाचित किसी भविष्य-वक्ता की आवश्यकता नहीं है।

रामचरितमानस की आलोचना

'रामचरितमानस' को पढ़कर समाज के वे लोग क्या सोचते होंगे जिन पर इसमें जातिवादी और वर्णवादी फिकरे कसे गए हैं। शायद यही कारण है कि बाबा नागार्जुन ने 'रामचरितमानस' को लेकर लिखा था कि-

...रामचरितमानस हमारी जनता के लिए क्या नहीं है? सभी कुछ है ! दकियानूसी का दस्तावेज है।.. नियतिवाद की नैय्या है।.. जातिवाद की जुगाली है।.. सामंतशाही की शहनाई है! ब्राह्मणवाद के लिए वातानुकूलित विश्रामागार.

.. पौराणिकता का पूजा मंडप... वह क्या नहीं है! सब कुछ है, बहुत कुछ है ! रामचरितमानस की बदौलत ही उत्तर भारत की लोकचेतना सही तौर पर स्पंदित नहीं होती। 'रामचरितमानस' की महिमा ही जनसंघ के लिए हिन्दीभाषी प्रदेशों में सबसे बड़ा भरोसा होती है। शूद्र वर्ग और स्त्री वर्ग को 'सहज अपावन' और 'अति अधम' बतलाने वाली एक भी पंक्ति जिस संस्करण में छपी हो, 'रामचरितमानस' का वह संस्करण गैर-कानूनी घोषित हो जाये। ब्राह्मणशाही और सामंतशाही के धूर्त प्रतिनिधि ऊंचे-ऊंचे पदों पर जमे बैठे हैं। अब भी मनुस्मृति और रामचरितमानस उनके गले में झूलता रहेगा... इन को ही वे अपना असली 'नीतिग्रंथ' मानते हैं।.. समाजवाद के हमारे सपने तब तक अधूरे ही रहेंगे, जब तक 'मानस' का मोह नहीं टूटता... पिछड़ी जातियों में पैदा होकर भी सौ किस्म की मजबूरियाँ झेलने वाले साठ प्रतिशत इंसान तब तक सही अर्थों में 'स्वतंत्र और स्वाभिमानी' भारतीय नहीं होंगे, जब तक 'रामचरितमानस' सरीखे पौराणिक संविधान ग्रन्थ की कृपा से प्रभु जातीय भारतीयों की गुलामी का पट्टा उनके गले में झूलता रहेगा।

6

सुन्दर काण्ड

पंचम सोपानसुन्दरकाण्ड

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम्।।1।।
नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च।।2।।
अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।।3।।
जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई।।
जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी।।
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा।।

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर।।
बार–बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी।।
जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता।।
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना।।
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी।।
दो.– हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।।1।।
जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा।।
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता।।
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा।।
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं।।
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।।
कबनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना।।
जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।।
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ।।
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।।
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मांगा बिदा ताहि सिरु नावा।।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा।।
दो.–राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देह गई सो हरषि चलेउ हनुमान।।2।।
निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई।।
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं।।
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई।।
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।।
ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा।।
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा।।
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए।।
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढेउ भय त्यागें।।
उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई।।
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी।।

अति उतंग जलनिधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा।।
छं–कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना।।
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथिन्ह को गनै।।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै।।
बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।।
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक एकन्ह तर्जहीं।।
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानषु धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।।
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही।।3।।
दो.–पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।।3।।
मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।।
पुनि संभारि उठि सो लंका। जोरि पानि कर बिनय संसका।।
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।।
बिकल होसि तैं कपि कें मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे।।
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता।।
दो.–तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।4।।
प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कौसलपुर राजा।।
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।
गरुड़ सुमेरु रेनू सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही।।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।।

सयन किए देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही।।
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा।।
दो.–रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरषि कपिराइ।।5।।
लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करै कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा।।
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषण उठि तहँ आए।।
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।।
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई।।
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी।।
दो.–तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम।।6।।
सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।।
जौ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।।
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।।
दो.–अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर।।7।।
जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी।।
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा।।
पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।।
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता।।
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई।।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ।।
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा।।

कृस तन सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी।।
दो.-निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।।8।।
तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई।।
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा।।
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा।।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।।
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।।
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।
सठ सूने हरि आनेहि मोहि। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।
दो.- आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन।।9।।
सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी।।
स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।
चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं।।
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।।
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा।।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रसहु जाई।।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।।
दो.-भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रस देखावहि धरहिं रूप बहु मंद।।10।।
त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना।।
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।

यह सपना में कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी।।
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं।।
दो.–जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच।।11।।
त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी।।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसहु बिरहु अब नहिं सहि जाई।।
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।
सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि।।
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।।
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलहि न पावक मिटिहि न सूला।।
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा।।
पावकमय ससि स्त्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी।।
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।।
सो.–कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारी तब।
जनु असोक अंगार दीन्हि हरषि उठि कर गहेउ।।12।।
तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी।।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई।।
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।
रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई।।
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कहि सो प्रगट होति किन भाई।।
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैंठीं मन बिसमय भयऊ।।
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की।।
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।।
नर बानरहि संग कहु कैसें। कहि कथा भइ संगति जैसें।।
दो.–कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास।।13।।

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी।।
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मों कहुँ जलजाना।।
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी।।
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई।।
सहज बानि सेवक सुख दायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक।।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहि निरखि स्याम मृदु गाता।।
बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता।।
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता।।
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना।।
दो.–रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गद गद भयउ भरे बिलोचन नीर।।14।।
कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता।।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू।।
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।
कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।।
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतेनहि माहीं।।
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।।
कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता।।
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई।।
दो.–निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु।।15।।
जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई।।
रामबान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की।।
अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई।।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।।
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं।।
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना।।
मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा।।

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा।।
सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ।।
दो.–सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल।।16।।
मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी।।
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।।
बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा।।
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता।।
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा।।
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी।।
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं।।
दो.–देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु।।17।।
चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे।।
नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी।।
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।।
सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना।।
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे।।
पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा।।
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा।।
दो.–कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि।।18।।
सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना।।
मारसि जनि सुत बांधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही।।
चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।।
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।।
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।।

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा।
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई।।
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।
दो.-ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार।।19।।
ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा।।
तेहि देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ।।
जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी।।
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा।।
कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए।।
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई।।
कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका।।
दो.-कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद।।20।।
कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहिं के बल घालेहि बन खीसा।।
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।।
मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा।।
सुन रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचित माया।।
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा।
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन।।
धरइ जो बिबिध देह सुरत्रता। तुम्ह ते सठन्ह सिखावनु दाता।
हर कोदंड कठिन जेहि भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा।।
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली।।
दो.-जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि।।21।।
जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।।
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा।।
खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।।
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी।।
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनयँ तुम्हारे।।

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।
बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी।।
जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई।।
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै।।
दो.–प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि।।22।।
राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम्ह करहू।।
रिषि पुलिस्त जसु बिमल मंयका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका।।
राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा।।
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषण भूषित बर नारी।।
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।।
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गए पुनि तबहिं सुखाहीं।।
सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्रता नहिं कोपी।।
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही।।
दो.–मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान।।23।।
जदपि कहि कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी।।
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी।।
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।।
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना।।
सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहुँ मूढ़ कर प्राना।।
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए।
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता।।
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई।।
सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर।।
दो–कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ।।24।।
पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि।।
जिन्ह कै कीन्हसि बहुत बड़ाई। देखेऊँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई।।
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।।

जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचौं मूढ़ सोइ रचना।।
रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी।।
बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी।।
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता।।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भई सभीत निसाचर नारीं।।
दो.–हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जन्ना कपि बढ़ि लाग अकास।।25।।
देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई।।
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला।।
तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा।।
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई।।
साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा।।
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं।।
ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।।
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी।।
दो.–पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि।।26।।
मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा।।
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ।।
कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा।।
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।
तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु।।
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा।।
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना।।
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती।।
दो.–जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह।।27।।
चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्त्रवहिं सुनि निसिचर नारी।।
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा।।
हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना।।

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा।।
मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी।।
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा।।
तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए।।
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे।।
दो.–जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज।।28।।
जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई।।
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा।।
आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा।।
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी।।
नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना।।
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ।
राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा।।
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई।।
दो.–प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज।।29।।
जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया।।
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर।।
सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रेलोक उजागर।।
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू।।
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।।
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए।।
सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए।।
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।
दो.–नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट।।30।।
चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही।।
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी।।
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना।।
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।।
नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करिहिं हठि बाधा।।
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा।।
नयन स्त्रवहि जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी।
सीता के अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला।।
दो.–निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति।।31।।
सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना।।
बचन काँय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही।।
कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी।।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्रता। लोचन नीर पुलक अति गाता।।
दो.–सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्रहि त्रहि भगवंत।।32।।
बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।।
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।।
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर।।
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा।।
कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका।।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना।।
साखामृग के बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई।।
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बिधि बिपिन उजारा।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।
दो.– ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकुल।
तब प्रभावँ बड़वानलहिं जारि सकइ खलु तूल।।33।।
नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी।।
उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।।

यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा।।
सुनि प्रभु बचन कहहिं कपिबृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा।।
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा।।
अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे।।
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी।।
दो.–कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ।।34।।
प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गरजहिं भालु महाबल कीसा।।
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना।।
राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा।।
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना।।
जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।।
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं।।
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई।।
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहि बानर भालु अपारा।।
नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी।।
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं।।
छं.–चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे।।
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं।।1।।
सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ट कठोर सो किमि सोहई।।
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी।।2।।
दो.–एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर।।35।।
उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गयउ कपि लंका।।
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा।।
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई।।
दूतन्हि सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी।।

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी।।
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहु।।
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्त्रवहीं गर्भ रजनीचर धरनी।।
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई।।
तब कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई।।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।।
दो.–राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक।।36।।
श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी।।
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा।।
जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई।।
कंपहिं लोकप जाकी त्रसा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा।।
अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई।।
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता।।
बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई।।
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू।।
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माही।।
दो.–सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास।।37।।
सोइ रावन कहुँ बनि सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई।।
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा।।
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन।।
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरुप कहउँ हित ताता।।
जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं।।
चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई।।
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ।।
दो.– काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।।38।।
तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता।।

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनुधारी।।
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।।
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा।।
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही।।
सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा।।
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन।।
दो.–बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस।।39(क)।।
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात।।39(ख)।।
माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना।।
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन।।
रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ।।
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी।।
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।
तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता।।
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।।
दो.–तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीत देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार।।40।।
बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी।।
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मुत्यु अब आई।।
जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।।
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाही।।
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।
उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई।।
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा।।
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ।।
दो.=रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मै रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि।।41।।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं।।
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी।।
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।।
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई।।
दो.= जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।42।।
एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा।।
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा।।
ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई।।
कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा।।
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।।
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा।।
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी।।
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना।।
दो.=सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि।।43।।
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू।।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।।
जौं पै दुष्टहदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई।।
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा।।
जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते।।
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई।।
दो.=उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि चले अंगद हनू समेत।।44।।

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर।।
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता।।
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी।।
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन।।
सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा।।
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता।।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्रता।।
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा।।
दो.–श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्रहि त्रहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।45।।
अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा।।
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा।।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी।।
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।।
खल मंडलीं बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती।।
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।।
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्ह जानि जन दाया।।
दो.–तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम।।46।।
तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना।।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा।।
ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी।।
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं।।
अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे।।
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।।
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ।।
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा।।
दो.–अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिब सेब्य जुगल पद कंज।।47।।
सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ।।

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवे सभय सरन तकि मोही।।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना।।
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं।।
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें।।
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें।।
दो.- सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम।।48।।
सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें।।
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा।।
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी।।
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा।।
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी।।
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा।।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा।।
दो.-रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेहु राजु अखंड।।49(क)।।
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।49(ख)।।
अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना।।
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा।।
पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी।।
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।।
सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा।।
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती।।
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक।।
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई।।

दो.–प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि।।50।।
सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई।।
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा।।
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा।।
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।
सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा।।
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई।।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई।।
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए।।
दो.–सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह।।51।।
प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ।।
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने।।
कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर।।
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए।।
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे।।
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना।।
सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए।।
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती।।
दो.–कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलेहु न त आवा काल तुम्हार।।52।।
तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा।।
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए।।
बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता।।
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी।।
करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जब कर कीट अभागी।।
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई।।
जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा।।
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रस अति मोरी।।
दो.–की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।

कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर।।53।।
नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें।।
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा।।
रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना।।
श्रवन नासिका काटै लागे। राम सपथ दीन्हे हम त्यागे।।
पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई।।
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी।।
जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा।।
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला।।
दो.–द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि।।54।।
ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना।।
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रेलोकहि गनहीं।।
अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर।।
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं।।
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा।।
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहीं न त भरि कुधर बिसाला।।
मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा।।
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहु ग्रसन चहत हहिं लंका।।
दो.–सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहु जीति सकहिं संग्राम।।55।।
राम तेज बल बुधि बिपुलाई। तब भ्रातहि पूँछेउ नय नागर।।
तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं।।
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा।।
सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई।।
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई।।
सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें।।
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी।।
रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।।
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन।।
दो.–बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।

राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस।।56(क)।।
की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग।।56(ख)।।
सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई।।
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा।।
कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी।।
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा।।
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ।।
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही।।
जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे।
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही।।
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ।।
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई।।
रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी।।
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा।।
दो.–बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।57।।
लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू।।
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती।।
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा।।
संघानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।।
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने।।
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना।।
दो.–काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच।।58।।
सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी।।
तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए।।
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।।

प्रभु भल कीन्ही मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही।।
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई।।
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जौ तुम्हहि सोहाई।।
दो.-सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ।।59।।
नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई।।
तिन्ह के परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।
मैं पुनि उर धरि प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई।।
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ।।
एहि सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी।।
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा।।
देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी।।
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा।।
छं.-निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ।।
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना।।
दो.-सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान।।60।।
मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम
इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसनेपंचमः सोपानः समाप्तः।

7

तुलसी की भक्तिपद्धति

हम्मीर के समय में चारणों का वीरगाथा काल समाप्त होते ही हिन्दी कविता का प्रवाह राजकीय क्षेत्रों से हटकर भक्तिपथ और प्रेमपथ की ओर चल पड़ा। देश में मुसलमान साम्राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने पर वीरोत्साह के सम्यक् संचार के लिए वह स्वतन्त्र क्षेत्रों न रह गया, देश का ध्यान अपने पुरुषार्थ और बल पराक्रम की ओर से हटकर भगवान की शक्ति और दया दाक्षिण्य की ओर गया। देश का वह नैराश्य काल था, जिसमें भगवान के सिवाय और कोई सहारा नहीं दिखाई देता था। रामानन्द और वल्लभाचार्य ने जिस भक्तिरस का प्रभूत संचय किया, कबीर और सूर आदि की वाग्धारा ने उसका संचार जनता के बीच किया। साथ ही कुतबन, जायसी आदि मुसलमान कवियों ने अपनी प्रबन्ध रचना द्वारा प्रेमपथ की मनोहरता दिखाकर लोगों को लुभाया। इस भक्ति और प्रेम के रंग में देश ने अपना दु:ख भुलाया, उसका मन बहला।

भक्तों के भी दो वर्ग थे। एक तो भक्ति के प्राचीन स्वरूप को लेकर चला था, अर्थात् प्राचीन भागवत सम्प्रदाय के नवीन विकास का ही अनुयायी था और दूसरा विदेशी परम्परा का अनुयायी, लोकधर्म से उदासीन तथा समाजव्यवस्था और ज्ञान विज्ञान का विरोधी था। यह द्वितीय वर्ग जिस घोर नैराश्य की विषम स्थिति में उत्पन्न हुआ, उसी के सामंजस्यसाधन में सन्तुष्ट रहा। उसे भक्ति का उतना ही अंश ग्रहण करने का साहस हुआ, जितने की

मुसलमानों के यहाँ भी जगह थी। मुसलमानों के बीच रहकर इस वर्ग के महात्माओं का भगवान के उस रूप पर जनता की भक्ति को ले जाने का उत्साह न हुआ, जो अत्याचारियों का दमन करनेवाला और दुष्टों का विनाश कर धर्म को स्थापित करनेवाला है। इससे उन्हें भारतीय भक्तिमार्ग के विरुद्ध ईश्वर के सगुण रूप के स्थान पर निर्गुण रूप ग्रहण करना पड़ा, जिसे भक्ति का विषय बनाने में उन्हें बड़ी कठिनता हुई।

प्रथम वर्ग के प्राचीन परम्परावाले भक्त वेदशास्त्रज्ञ तत्त्वतदर्शी आचार्यों द्वारा परवर्तित सम्प्रदायों के अनुयायी थे। उनकी भक्ति का आधार भगवान् का लोक धर्मरक्षक और लोकरंजक स्वरूप था। इस भक्ति का स्वरूप नैराश्यमय नहीं है, इसमें उस शक्ति का बीज है, जो किसी जाति को फिर उठाकर खड़ा कर सकता है। सूर और तुलसी ने इसी भक्ति के सुधारस से सींचकर मुरझाते हुए हिन्दू जीवन को फिर से हरा किया। पहले भगवान् का हँसता खेलता रूप दिखाकर सूरदास ने हिन्दू जाति की नैराश्यजनित खिन्नता हटाई, जिससे जीवन में प्रफुल्लता आ गई। पीछे तुलसीदासजी ने भगवान का लोक व्यापारव्यापी मंगलमय रूप दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया। अब हिन्दू जाति निराश नहीं है।

घोर नैराश्य के समय हिन्दू जाति ने जिस भक्ति का आश्रय लिया, उसी की शक्ति से उसकी रक्षा हुई। भक्ति के सच्चे उद्वार ने ही हमारी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान की और मानव जीवन की सरसता दिखाई। इस भक्ति के विकास के साथ ही साथ इसकी अभिव्यंजना करनेवाली वाणी का विकास भी स्वाभाविक था। अतः सूर और तुलसी के समय हिन्दी कविता की जो समृद्धी दिखाई देती है, उसका कारण शाही दरबार की कद्रदानी नहीं है, बल्कि शाही दरबार की कद्रदानी का कारण वह समृद्ध है। उस समृद्ध काल के कारण हैं, सूर-तुलसी और सूर-तुलसी का उत्पादक है इस भक्ति का क्रमशः विकास, जिसके अवलम्बन थे राम और कृष्ण। लोक मानस के समक्ष राम और कृष्ण जब फिर से स्पष्ट करके रखे गए, तभी से वह उनके एक-एक स्वरूप का साक्षात्कार करता हुआ उसकी व्यंजना में लग गया। यहाँ तक कि सूरदास तक आते-आते भगवान की लोकरंजनकारिणी प्रफुल्लता की पूर्ण व्यंजना हो गई। अन्त में उनकी अखिल जीवनवृत्ति व्यापिनी कला को अभिव्यक्त करनेवाली वाणी का मनोहर स्फुरण तुलसी के रूप में हुआ।

इस दिव्य वाणी का मंजु घोष घर–घर क्या, एक–एक हिन्दू के हृदय तक पहुँच गया कि भगवान दूर नहीं हैं, तुम्हारे जीवन में मिले हुए हैं। यही वाणी हिन्दू जाति को नया जीवनदान दे सकती थी। उस समय यह कहना कि ईश्वर सबसे दूर है, निर्गुण है, निरंजन है, साधरण जनता को और भी नैराश्य के गड्ढे में ढकेलता। ईश्वर बिना पैर के चल सकता है, बिना हाथ के मार सकता है और सहारा दे सकता है, इतना और जोड़ने से भी मनुष्य की वासना को पूरा आधार नहीं मिल सकता। जब भगवान मनुष्य के पैरों से दीनदुखियों की पुकार पर दौड़कर आते दिखाई दें और उनका हाथ मनुष्य के हाथ के रूप में दुष्टों का दमन करता और पीड़ितों को सहारा देता दिखाई दे, उनकी आँखें मनुष्य की आँखें होकर आँसू गिराती दिखाई दें, तभी मनुष्य के भावों की पूर्ण तृप्ति हो सकती है और लोकधर्म का स्वरूप प्रत्यक्ष हो सकता है।

1 यूरोप में ईसाई धर्म के भक्त उपदेशकों द्वारा ज्ञान विज्ञान की उन्नति के मार्ग में किस प्रकार बाध पड़ती रही है, यह वहाँ का इतिहास जाननेवाले मात्र जानते हैं।

इस भावना का हिन्दू हृदय से बहिष्कार नहीं हो सकता। जहाँ हमें दिन दिन बढ़ता हुआ अत्याचार दिखाई पड़ा कि हम उस समय की प्रतीक्षा करने लगेंगे जब वह 'रावणत्व' की सीमा पर पहुँचेगा और 'रामत्व' का आविर्भाव होगा। तुलसी के मानस से रामचरित की जो शील शक्ति सौन्दर्यमयी स्वच्छ धरा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँचकर भगवान के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया। रामचरित की इसी जीवनव्यापकता ने तुलसी की वाणी को राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पंडित सबके हृदय और कंठ में सब दिन के लिए बसा दिया। किसी श्रेणी का हिन्दू हो, वह अपने प्रत्येक जीवन में राम को साथ पाता है–सम्पत्ति में, विपत्ति में, घर में, वन में, रणक्षेत्रों में, आनन्दोत्सव में, जहाँ देखिए, वहाँ राम। गोस्वामीजी ने उत्तारापथ के समस्त हिन्दू जीवन को राममय कर दिया। गोस्वामीजी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी के प्रभाव से आज भी हिन्दू भक्त अवसर के अनुसार सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, महत्तव पर श्रद्धा करता है, शील की ओर प्रवृत्त होता है, सन्मार्ग पर पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य धरण करता है, कठिन कर्म में उत्साहित होता है, दया से आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है, शिष्टता का अवलम्बन करता है और मानवजीवन के महत्तव का अनुभव करता है।

जिस विदेशी परम्परा की भक्ति का उल्लेख ऊपर हुआ है उसके कारण विशुद्ध भारतीय भक्तिमार्ग का स्वरूप बहुत कुछ आच्छन्न हो चला था। गोस्वामीजी की सूक्ष्म दृष्टि इस पर पड़ी भारतीय भक्तिमार्ग और विदेशी भक्तिमार्ग में जो स्वरूपभेद है उसका संक्षेप में निरूपण हम यहाँ पर कर देना चाहते हैं।

हमारे यहाँ ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और योगमार्ग तीनों अलग-अलग रहे हैं। ज्ञानमार्ग शुद्ध बुद्धि की स्वाभाविक क्रिया अर्थात् चिन्तनपद्धति का आश्रय लेता है, भक्तिमार्ग शुद्ध हृदय की स्वाभाविक अनुभूतियों अर्थात् भावों को लेकर चलता है, योगमार्ग चित्त की वृत्तियों को अनेक प्रकार के अभ्यासों द्वारा अस्वाभाविक (एबनार्मल) बनाकर अनेक प्रकार की अलौकिक सिद्धियों के बीच होता हुआ अन्तःस्थ ईश्वर तक पहुँचना चाहता है। इस स्पष्ट विभाग के कारण भारतीय परम्परा का भक्त न तो पारमार्थिक ज्ञान का दावा करता है, न अलौकिक सिद्धि या रहस्यदर्शन का। तत्वज्ञान के अधिकारी तर्कबुद्धिसम्पन्न चिन्तनशील दार्शनिक ही माने जाते थे। सूर और तुलसी के सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जाता है कि उन्होंने भगवान् के दर्शन पाए थे, पर यह कोई नहीं कहता कि शंकराचार्य और रामानुज भी ज्ञान की जिस सीमा तक नहीं पहुँचे थे उस सीमा तक वे पहुँचे थे। भारतीय पद्धति का भक्त यदि झूठा दावा कर सकता है तो यही कि मैं भगवान् के ही प्रेम में मग्न रहता हूँ, यह नहीं कि जो बात कोई नहीं जानता वह मैं जाने बैठा हूँ। प्रेम के इस झूठे दावे से, इस प्रकार के पाखंड से, अज्ञान के अनिष्ट प्रचार की आशंका नहीं।

भारतीय भक्त का प्रेममार्ग स्वाभाविक और सीधा है, जिस पर चलना सब जानते हैं, चाहे चलें न। वह ऐसा नहीं जिसे कोई विरला ही जानता हो या पा सकता हो। वह तो संसार में सबके लिए ऐसा ही सुलभ है जैसे अन्न और जल-

निगम अगम, साहब सुगम, राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माँह।।

सरलता इस मार्ग का नित्य लक्षण है-मन की सरलता, वचन की सरलता और कर्म की सरलता-

सूधो मन, सूधो बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति।।

भारतीय परम्परा के भक्त में दुराव, छिपाव की प्रवृत्ति नहीं होती। उसे यह प्रकट करना नहीं रहता कि जो बातें मैं जानता हूँ उन्हें कोई विरला ही

समझ सकता है, इससे अपनी वाणी को अटपटी और रहस्यमयी बनाने की आवश्यकता उसे कभी नहीं होती। वह सीधी–सादी सामान्य बात को भी रूपकों में लपेटकर पहेली बनाने और असंबद्धता के साथ कहने नहीं जाता। बात यह है कि वह अपना प्रेम किसी अज्ञात के प्रति नहीं बताता। उसका उपास्य ज्ञात है। उसके निकट ईश्वर ज्ञात और अज्ञात दोनों है। जितना अज्ञात है उसे तो वह परमार्थान्वेषी दार्शनिकों के चिन्तन के लिए छोड़ देता है और जितना ज्ञात है उसी को लेकर वह प्रेम में लीन रहता है। तुलसी कहते हैं कि जिसे हम जानेंगे, वही हमें जानेगा–

जाने जानत, जोइए, बिनु जाने को जान?

पर पाश्चात्य दृष्टि में भक्तिमार्ग 'रहस्यवाद' के अन्तर्गत ही दिखाई पड़ता है। बात यह है कि पैगम्बरी (यहूदी, ईसाई, इस्लाम) मतों में धर्मव्यवस्था के भीतर तत्त्वचिंतन या ज्ञानकांड के लिए स्थान न होने के कारण आध्यीत्मिक ज्ञानोपलब्धि रहस्यात्मक ढंग से (स्वप्न, सन्देश, छायादर्शन आदि के द्वारा) ही माननी पड़ती थी। पहुँचे हुए भक्तों और सन्तो(सेंट्स) के सम्बन्ध में लोगों की यह धारणा थी कि जब वे आवेश की दशा में मूच्छित या बाह्यज्ञानशून्य होते हैं, तब भीतर ही भीतर उनका 'ईश्वर के साथ संयोग' होता है और वे छायारूप में बहुत सी बातें देखते हैं। ईसाई धर्म में जब स्थूल एकेश्वरवाद (जो वास्तव में देववाद ही है) के स्थान पर प्राचीन आर्य दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित 'सर्ववाद' (पेनथीज्म) लेने की आवश्यकता हुई तब वह बुद्धि द्वारा प्रस्तुत ज्ञान के रूप में तो लिया नहीं जा सकता था, ईश्वर द्वारा रहस्यात्मक ढंग से प्रेषित ज्ञान के रूप में ही लिया जा सकता था। इससे परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध की वे ही बातें, जो यूनान या भारत के प्राचीन दार्शनिक कह गए थे, विलक्षण रूपकों द्वारा कुछ दुर्बोध और स्पष्ट बनाकर सन्त लोग कहा करते थे। अस्पष्टता और असंबद्धता इसलिए आवश्यक थी कि तथ्यों का साक्षात्कार छायारूप से ही माना जाता था। इस प्रकार अरब, फारस तथा यूरोप में भावात्मक और ज्ञानात्मक रहस्यवाद का चलन हुआ।

भारत में धर्म के भीतर भी ज्ञान की प्रकृत पद्धति और प्रेम की प्रकृत पद्धति स्वीकृत थी अतः भावात्मक और ज्ञानात्मक रहस्यवाद की कोई आवश्यकता न हुई। साधनात्मक और क्रियात्मक रहस्यवाद का अलबत्ता योग, तन्त्र और रसायन के रूप में विकास हुआ। इसके विकास में बौद्धों ने बहुत कुछ योग दिया था। हठयोग की परम्परा बौद्धों की ही थी। मत्स्येन्द्रनाथ के

शिष्य गोरखनाथ ने उसे शैव रूप दिया। गोरखपन्थ का प्रचार राजपूताने की ओर अधिक हुआ, इसी से उस पन्थ के ग्रन्थ राजस्थानी भाषा में लिखे गए हैं। मुसलमानी शासन के प्रारम्भ काल में इसी पन्थ के साधु उत्तरी भारत में अधिक घूमते दिखाई देते थे, जिनकी रहस्यभरी बातें हिन्दू और मुसलमान दोनों सुनते थे। मुसलमान अधिकतर खड़ी बोली बोलते थे, इससे इस पन्थ के रमते साधु राजस्थानी मिली खड़ी बोली का व्यवहार करने लगे। इस प्रकार एक सामान्य सधुक्कड़ी भाषा बनी जिसका व्यवहार कबीर, दादू और निर्गुणी सन्तों ने किया।

अरब और फारस का भावात्मक रहस्यवाद लेकर जब सूफी हिन्दुस्तान में आए तब उन्हें यही रहस्योन्मुख सम्प्रदाय मिला। इसी से उन्होंने हठयोग की बातों का बड़ी उत्कंठा के साथ अपने सम्प्रदाय में समावेश किया। जायसी आदि सूफी कवियों की पुस्तकों में योग और रसायन की बहुत सी बातें बिखरी मिलती हैं। रहस्यवादी सूफियों के प्रेमतत्त्वों के साथ वेदान्त के ज्ञानमार्ग की कुछ बातें जोड़कर जो निर्गुणपन्थ चला उसमें भी 'इड़ा, पिंगला, सुषमन नाड़ी' की बराबर चर्चा रही।

सूफियों ने हठयोगियों की जिन बातों को अपने मेल में देखा वे ये थीं–

1. रहस्य की प्रवृत्ति,
2. ईश्वर को केवल मन के भीतर समझना और ढूँढ़ना,
3. बाहरी पूजा और उपासना का त्याग।

ये तीनों बातें भारतीय भक्तिमार्ग से मेल खानेवाली नहीं थीं। जैसा कि ऊपर दिखा आए हैं, भारतीय भक्तिपद्धति 'रहस्य' की प्रवृत्ति को भक्ति की सच्ची भावना में बाधक समझती है। भारतीय परम्परा का भक्त अपने उपास्य को बाहर लोक के बीच प्रतिष्ठित करके देखता है, अपने हृदय के कोने में नहीं। वह ध्यान भी करता है तो जगत के बीच अपनी प्रत्यक्ष कला का प्रकाश करते हुए व्यक्त ईश्वर का। तुलसी का वन के बीच राम का दर्शन करना प्रसिद्ध है, हृदय के भीतर नहीं।

इसी प्रकार भक्तिभावना में लीन होने पर वह सब कुछ 'राममय' देखता है और अपने से बाहर सबकी पूजा करना चाहता है। हठयोगियों की बातें भक्ति की सच्ची भावना में किस प्रकार बाधा पहुँचानेवाली थीं इस बात को लोकदर्शी गोस्वामीजी की सूक्ष्म दृष्टि पहचान गई। उनके समय में गोरखपन्थी साधु योग की रहस्यमयी बातों का जो प्रचार कर रहे थे उसके कारण उन्हें जनता के हृदय से भक्तिभावना भागती दिखाई पड़ी–

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते, सो केलि ही छरो सो है।

'ईश्वर को मन के भीतर ढूँढ़ो' इस वाक्य ने भी पाखंड का बड़ा चौड़ा रास्ता खोला है। जो अपने को ज्ञानी प्रकट करना चाहते हैं वे प्रायः कहा करते हैं कि 'ईश्वर को अपने भीतर देखो।' गोस्वामीजी ललकारकर कहते हैं कि भीतर ही क्यों देखें, बाहर क्यों न देखें–

अन्तर्जामिहु तें बड़ बारहजामी हैं राम जो नाम लिए तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिए तें॥

गोस्वामीजी का पक्ष है यदि मनुष्य के छोटे से अन्तःकरण के भीतर ईश्वर दिखाई भी पड़े तो भी अखिल विश्व के बीच अपनी विभूतियों से भासित होनेवाला ईश्वर उससे कहीं पूर्ण और कल्याणकारी है। हमारी बद्ध और संकुचित आत्मा केवल द्रष्टा हो सकती है, दृश्य नहीं। अतः यदि परमात्मा को, भगवान् को, देखना है तो उन्हें व्यक्त जगत् के सम्बन्ध से देखना चाहिए। इस मध्यंस्थः के बिना आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध व्यक्त ही नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि भारतीय भक्ति मार्ग व्यक्तिकल्याण और लोककल्याण दोनों के लिए है। वह लोक या जगत् को छोड़कर नहीं चल सकता। भक्तिमार्ग का सिद्धान्त है–भगवान् को बाहर जगत् में देखना। 'मन के भीतर देखना' यह योगमार्ग का सिद्धान्त है, भक्तिमार्ग का नहीं। इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिए।

भक्ति रागात्मिका वृत्ति है, हृदय का एक भाव है। प्रेमभाव उसी स्वरूप और उसी गुणसमूह पर टिक सकता है, जो दृश्य जगत् में हमें आकर्षित करता है। इसी जगत् के बीच भासित होता हुआ स्वरूप ही प्रेम या भक्ति का आलम्बन हो सकता है। इस जगत् से सर्वथा असम्बद्ध किसी अव्यक्त सत्ता से प्रेम करना मनोविज्ञान के अनुसार सर्वथा असम्भव है। भक्ति केवल ज्ञाता या द्रष्टा के रूप में ही ईश्वर की भावना लेकर सन्तुष्ट नहीं हो सकती। वह ज्ञातृपक्ष और ज्ञेयपक्ष दोनों को लेकर चलती है।

बौद्धों की महायान शाखा का एक और अवशिष्ट 'अलखिया सम्प्रदाय' के नाम से उड़ीसा तथा उत्तरी भारत के अनेक भागों में घूमता दिखाई पड़ता था। यह भी महायान शाखा के बौद्धों के समान अन्तःकरण के मन, बुद्धि, विवेक, हेतु और चैतन्य–ये पाँच भेद बतलाता था और शून्य का ध्यान करने को कहता था।

अब भी इस सम्प्रदाय के साधु दिखाई पड़ते हैं।

इस सम्प्रदाय का 'विष्णुगर्भपुराण' नामक ग्रन्थ उड़िया भाषा में है, जिसका सम्पादन प्रो. आर्तवल्लभ महन्ती ने किया है। उन्होंने इसका रचनाकाल 1550 ई. के पहले स्थिर किया है। इस पुस्तक के अनुसार विश्व के चारों ओर 'अलख' ही का प्रकाश हो रहा है। अलख ही विष्णु है, जिससे निराकार की उत्पत्ति हुई। सारी सृष्टि अलख के गर्भ में रहती है। अलख अज्ञेय है। चारों वेद उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। अलख से प्रादुर्भूत निराकार तुरीयावस्था में रहता है और उसी दशा में उससे ज्योति की उत्पत्ति होती है। यह सृष्टितत्त्व बौद्धों की महायान शाखा का है। 'अलख' सम्प्रदाय के साधु अपने को बड़े भारी रहस्यदर्शी योगी और 'अलख' को लखनेवाले प्रकट किया करते थे। ऐसा ही एक साधु गोस्वामीजी के सामने आकर 'अलख', 'अलख' करने लगा इस पर उन्होंने उसे इस प्रकार फटकारा–

हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै रामनाम जपु नीच॥

हम अपने साथ जगत् का जो सम्बन्ध अनुभव करते हैं उसी के मूल में भगवान् की सत्ता हमें देखनी चाहिए। 'जासों सब नातो फुरै' उसी को हमें पहचानना चाहिए। जगत के साथ हमारे जितने सम्बन्ध हैं सब राम के सम्बन्ध से हैं–

'नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।'

मातापिता जिस स्नेह से हमारा लालनपोषण करते हैं, भाईबन्धु, इष्टमित्र जिस स्नेह से हमारा हित करते हैं, उसे राम ही का स्नेह समझना चाहिए।

जिन–जिन वृत्तियों से लोक की रक्षा और रंजन होता है, उन सबका समाहार अपनी परमावस्था को पहुँचा हुआ जहाँ दिखाई पड़े, वहाँ भगवान की उतनी कला का पूर्ण प्रकाश समझकर, जितनी से मनुष्य को प्रयोजन है–अनन्त पुरुषोत्तम को उतनी मर्यादा के भीतर देखकर, जितनी से लोक का परिचालन होता है–सिर झुकाना मनुष्य होने का परिचय देना है, पूरी आदमियत का दावा करना है। इस व्यवहार क्षेत्रों से परे, नामरूप से परे जो ईश्वरत्व या ब्रह्मत्व है वह प्रेम या भक्ति का विषय नहीं, वह चिन्तन का विषय है। वह इस प्रकार लक्षित नहीं कि हमारे भावों का, हमारी मनोवृत्तियों का परम लक्ष्य हो सके। अतः अलक्ष्य का बहाना करके जितना लक्ष्य है उसकी ओर भी ध्यान न देना धर्म से भागना है।

गोस्वामीजी पूरे लोकदर्शी थे। लोकधर्म पर आघात करनेवाली जिन बातों का प्रचार उनके समय में दिखाई पड़ा उनकी सूक्ष्म दृष्टि उन पर पूर्ण रूप से पड़ी। कबीर आदि द्वारा परवर्तित निर्गुण पन्थ की लोकधर्म से विमुख करनेवाली वाणी का किस खरेपन के साथ उन्होंने विरोध किया इसका वर्णन 'लोकधर्म' के अन्तर्गत किया जाएगा।

भक्ति में बड़ी भारी शर्त है निष्कामता की। सच्ची भक्ति में लेनदेन का भाव नहीं होता। भक्ति के बदले में उत्तम गति मिलेगी, इस भावना को लेकर भक्ति हो ही नहीं सकती। भक्त के लिए भक्ति का आनन्द ही उसका फल है। वह शक्ति, सौन्दर्य और शील के अनन्त समुद्र के तट पर खड़ा होकर लहरें लेने में ही जीवन का परम फल मानता है। तुलसी इसी प्रकार के भक्त थे। कहते हैं कि वे एक बार वृन्दावन गए थे। वहाँ किसी कृष्णोपासक ने उन्हें छेड़कर कहा–'आपके राम तो बारह कला के अवतार हैं। आप श्रीकृष्ण की भक्ति क्यों नहीं करते जो सोलह कला के अवतार हैं?' गोस्वामीजी बड़े भोलेपन के साथ बोले–'हमारे राम अवतार भी हैं, यह हमें आज मालूम हुआ।' राम विष्णु के अवतार हैं, इससे उत्तम फल या उत्तम गति दे सकते हैं, बुद्धि के इस निर्णय पर तुलसी राम से भक्ति करने लगे हों, यह बात नहीं है। राम तुलसी को अच्छे लगते हैं, उनके प्रेम का यदि कोई कारण है तो यही है। इसी भाव को उन्होंने इस दोहे में व्यंजित किया है–

जौ जगदीस तौ अति भलो, जौ महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरन अनुराग॥

तुलसी को राम का लोकरंजक रूप वैसा ही प्रिय लगता है जैसा चातक को मेघ का लोकसुखदायी रूप।

अबतक जो कुछ कहा गया है उससे यह सिद्ध है कि शुद्ध भारतीय भक्तिमार्ग का 'रहस्यवाद' से कोई सम्बन्ध नहीं। तुलसी पूर्ण रूप में इसी भारतीय भक्तिमार्ग के अनुयायी थे अतः उनकी रचना को रहस्यवाद कहना हिन्दुस्तान को अरब या विलायत कहना है। कृष्णभक्ति शाखा का स्वरूप आगे चलकर अवश्य ऐसा हुआ जिसमें कहीं–कहीं रहस्यवाद की गुंजाइश हुई। अपने मूल रूप में भागवत सम्प्रदाय भी विशुद्ध रहा। श्रीकृष्ण का लोकरक्षक और लोकरंजक रूप गीता में और भागवत पुराण में स्फुरित है। पर धीरे धीरे वह स्वरूप आवृत होता गया और प्रेम का आलम्बन मधुर रूप

ही शेष रह गया। वल्लभाचार्यजी ने स्पष्ट शब्दों में उनका लोकसंग्रही रूप हटाया। उन्होंने लोक और वेद दोनों की मर्यादा का अतिक्रमण अपने सम्प्रदाय में आवश्यक ठहराया। लोक को परे फेंकने से कृष्णभक्ति व्यक्तिगत एकान्त प्रेमसाधना के रूप में ही रह गई। इतना होने पर भी सूरदास, नन्ददास आदि महाकवियों ने कृष्ण को इसी जगत के बीच वृन्दावन में रखकर देखा। उन्होंने रहस्यवाद का रंग अपनी कविता पर नहीं चढ़ाया।

मुसलमानी अमलदारी में सूफी पीरों और फकीरों का पूरा दौरदौरा रहा। लोकसंग्रह का भाव लिए रहने के कारण रामभक्ति शाखा पर तो उनका असर न पड़ा। पर, जैसा कि कह आए हैं, कृष्णभक्ति शाखा लोक को परे फेंककर व्यक्तिगत एकान्तसाधना का रंग पकड़ चुकी थी। इससे उसके कई प्रसिद्ध भक्तों पर सूफियों का पूरा प्रभाव पड़ा। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट लक्षित होती हैं। जैसे सूफी कव्वाल गाते गाते 'हाल' की दशा में हो जाते हैं वैसे ही महाप्रभु की मंडली भी नाचते नाचते मूर्च्छित हो जाती थी। यह मुर्च्छा रहस्य संक्रमण का एक लक्षण है। इसी प्रकार मीराबाई भी 'लोकलाज खोकर' अपने प्रियतम कृष्ण के प्रेम में मतवाली और विरह में व्याकुल रहा करती थी। नागरीदासजी भी इश्क का प्याला पीकर इसी प्रकार झूमा करते थे। यहीं तक नहीं, माधुर्यभाव की उपासना लेकर कई प्रकार के सखी सम्प्रदाय भी चले जिनमें समय समय पर प्रियतम के साथ संयोग हुआ करता है। एक कृष्णोपासक सम्प्रदाय स्वामी प्राणनाथजी ने चलाया जो न तो द्वारका, वृन्दावन आदि तीर्थों को कोई महत्त्व देता है और न मन्दिरों में श्रीकृष्ण की मूर्तियों का दर्शन करने जाता है। वह इस वृन्दावन और इसमें विहार करनेवाले कृष्ण को गोलोक की नित्यलीला की एक छाया मात्र मानता है।

जिस प्रकार मद, प्याला, मूर्छा और उन्माद सूफी रहस्यवादियों का एक लक्षण है उसी प्रकार प्रियतम ईश्वर के विरह की बहुत बढ़ीचढ़ी भाषा में व्यंजना करना भी सूफी कवियों की एक रूढ़ि है। यह रूढ़ि भारतीय भक्त कवियों के विनय में न पाई जाएगी। भारतीय भक्त तो अपनी व्यक्तिगत सत्ता के बाहर सर्वत्र भगवान का नित्य लीलाक्षेत्रों देखता है। उसके लिए विरह कैसा ?

8

तुलसी काव्य में भक्ति भावना

मनुष्य ने सदैव ही अलौकिक ईश्वर में अपनी श्रद्धा रखी है। प्रारंभ में वह प्रकृति को अपनी श्रद्धा का केन्द्र मानता था। जैसे-जैसे मानव की बुद्धि का विकास हुआ उसने अपनी समझ के अनुसार अपनी आस्था का केन्द्र परिवर्तित करता चला गया। कालान्तर में विभिन्न विद्वानों ने पौराणिक ग्रंथों में आस्था को भक्ति का नाम दे दिया। आदिकाल से हमारे देश में धर्म साधना के तीन प्रमुख पक्ष माने जाते रहे हैं क्रिया पक्ष, बुद्धि पक्ष एवं हृदय पक्ष। इन्हीं को कर्ममार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग के मूल में जानना चाहिए। देशकालानुसार धर्म विशेष में कोई भी एक पक्ष प्रमुख होता है और अन्य गौण हो जाते हैं। वैदिक साहित्य में तीनों का एक साथ विधान मिलता है। भारत में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति को अलग-अलग न मानकर इन्हें एक दूसरे का पूरक समझा जाता है।

भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज् सेवायाम्' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के संयोग से हुई जिसका अर्थ है 'सेवा'। भक्ति शास्त्र के विभिन्न आचार्यों ने इस शब्द की अनेकों व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं 'शाण्डिल्य भक्ति सूत्र' के अनुसार 'सा परानुशक्तिश्वरे' अर्थात्, ईश्वर के प्रति परम अनुराग ही भक्ति है। 'नारद भक्ति सूत्र' में ईश्वर के प्रति परम प्रेम को ही भक्ति बताया गया है, जोकि अमृत स्वरूप है (सा त्वास्मिन परम प्रेमस्वरूपा अमृतस्वरूपा च) श्रीमद् भागवत के अनुसार सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की

प्राकृतिक प्रवृत्ति निष्काम रूप से भगवान में जब लगती है तब उस प्रवृति को भक्ति कहते हैं। रूप गोस्वामी ने 'हरि–भक्ति–रसामृत सिन्धु' में ज्ञान और कर्म के प्रभाव से भिन्न होकर किसी प्रकार के फल की इच्छा किए बिना निरन्तर कृष्ण का प्रेमपूर्वक ध्यान करने को भक्ति माना है।

मध्ययुगीन संत कवियों ने भक्ति को कर्म से श्रेष्ठ बताया है। वहीं दूसरी और सगुण भक्ति काव्य की रचना करने वाले कवि सूर एवं तुलसी ने भी भक्ति को श्रेष्ठ बताया है। सूर भक्ति को भगवान के बिना असंभव मानते हैं। (रे मन समुझि सोचि विचार, भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि। – सूर सागर) तो वहीं तुलसी भक्ति को सुन्दर सदैव प्रकाशित रहने वाली चिन्तामणि मानते हैं। (राम भक्ति चिन्ता मणि सुन्दर .... परम प्रकाश रूप दिन राती ..... – रामचरित मानस) अतः भक्ति ईश्वर के प्रति हृदय में उत्पन्न परम अनुराग है जहां कर्म एवं बुद्धि की कोई अपेक्षा नहीं रहती।

रूप गोस्वामी ने भक्ति के दो प्रकार बताएँ हैं। एक 'साधना रूपा' और दूसरी 'साध्य रूपा'। पहली भक्ति को गौणी भक्ति के नाम से भी जाना जाता है, जबकि दूसरे प्रकार की भक्ति को परा भक्ति भी कहते हैं। ईश्वर की महिमा और दया आदि के स्मरण से साधक के हृदय में भक्ति की प्रथम अवस्था उत्पन्न होती है, जोकि गौणी भक्ति कहलाती है। इस भक्ति के दो भेद हैं वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। जिस भक्ति में केवल शास्त्रोक्त विधि का पालन होता है उसे वैधी भक्ति कहते हैं। जिस प्रेम भाव की दशा में भक्त के हृदय में परम शान्ति का उदय होता है उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। रागानुगा भक्ति के भी दो भेद बताए गए हैं– कामरूपा और सम्बन्धरूपा। गोपियों की भक्ति कामरूपा भक्ति के अन्तर्गत आती है जबकि दास्य, सख्य, वात्सल्य, दाम्पत्य का माधुर्य भक्ति के अन्तर्गत आती है। वैधी और रागानुगा भक्ति साधन दशा की भक्ति है, परा भक्ति अर्थात् साध्य भक्ति इससे आगे की अवस्था में आती है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति के चार भेद बताए हैं– सात्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुण। सगुण भक्त कवियों ने प्रथम तीन प्रकार की भक्ति को अपने काव्य में विशेष स्थान दिया है। साधना के दृष्टिकोण से भागवत में भक्ति के नौ भेद और गिनाए गए हैं जिसे नवधा भक्ति कहा जाता है। नवधा भक्ति, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, संख्य

और आत्म निवेदन के नाम से उल्लेखित है। प्रथम छः को वैधी भक्ति के अन्तर्गत लेते हैं, जबकि अन्तिम तीन रागानुगा भक्ति के अन्तर्गत लेते हैं। प्रायः सभी सगुण भक्ति धारा के भक्त कवियों एवं आचार्यों ने नवधा भक्ति का निरूपण किया है।

वैदिक साहित्य के अनुसार परब्रह्म निराकार है। ब्रह्म प्रकृति और जीव के गुणों से परे हैं। निर्गुण होते हुए भी ब्रह्म स्वाभाविक गुणों से युक्त होता है, अतः सगुण है। सगुण का अर्थ साकार से न होकर जीव से परे दिव्यगुणों से युक्तता से है। उपनिषदों में परम तत्त्व के दो रूप बताए गए हैं– निर्गुण या परब्रह्म, सगुण या अपर ब्रह्म। सगुण सविशेष साकार और उपाधियुक्त है, जबकि निर्गुण विशेष आकार एवं उपाधि से परे है। ब्रह्म अपने वास्तविक रूप में तो निर्गुण ही है, किन्तु उपासना के हेतु हम उसकी कल्पना सगुण साकार रूप में करते हैं।

कुछ लोगों के अनुसार परमात्मा को साकार मानने से उसमें एक देशीयता का दोष आ जाता है। ब्रह्म जब सर्वगुण सम्पन्न है तो रूप सम्पत्ति का दरिद्र क्यों रहे। अतएव ब्रह्म निराकार, साकार, निर्गुण, सगुण सभी है। निराकार ब्रह्म की भक्त उपासना के हेतु साकार रूप में कल्पना करता है। ब्रह्म जीव के गुणों से युक्त नहीं है, अतः निर्गुण है। स्वगुणों से युक्त है अतः सगुण है।1

गोस्वामी तुलसीदास पूर्वमध्य काल की सगुण काव्य धारा से संबंध रखते हैं। इन्हें राम भक्ति का सबसे श्रेष्ठ कवि माना जाता है। तुलसीदास ने विद्वानों, आचार्यों द्वारा बताए गए भक्ति के आधार को स्वीकार किया और कहा कि राग और क्रोध को जीतकर नीति पथ पर चलते हुए राम की प्रीति करना ही भक्ति है।

भक्ति का आलम्बन ही भक्त को ईष्ट होता है। इसीलिए तुलसी के इष्टदेव राम ही है। राम विष्णु के अवतार हैं। कहा जाता है कि जब पृथ्वी पर अनाचार की अति होती है तो भक्तों के कल्याण हेतु ईश्वर पृथ्वी पर अवतार अर्थात् साकार रूप लेकर पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। तुलसी के राम निर्गुण सगुण दोनों ही रूपो में नजर आते हैं। 'जग कारन तारन भय भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार 'मानस' इनके अनुसार निर्गुण भगवान ही सगुण रूप में प्रकट होते हैं अर्थात् सगुण और

निर्गुण के भेद को तुलसी नहीं मानते। (सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।। - मानस बालकाण्ड 115)

तुलसी ने अध्यात्म रामायण को अपना आधार माना है, इसमें विष्णु के अवतार राम के स्वरूप का विशद् वर्णन है। तुलसी ने इसे ही मानस में स्थान दिया है, तुलसी ने अध्यात्म रामायण के राम के समान ही अपने मानस में राम का स्वरूप व्यक्त किया है।

तुलसी के राम अन्य देवी देवताओं से सर्वोपरि है। वे अन्य देवी देवताओं की भांति प्रसन्न होकर वरदान तो देते हैं, परन्तु रूष्ट होकर श्राप नहीं देते। अतः राम को यदि कोई गलती से भी स्मरण कर लें, तो भी राम उस पर अपनी सम्पूर्ण दया दृष्टि डालते हैं। राम की प्रवृत्ति बिल्कुल विलक्षण है। उन्हें हमेशा दीन हीन ही प्रिय होते हैं। वे शरणागत की रक्षा करने में तो अतुलनीय है। अन्य देव 'बलि पूजा' के भी भूखे होते हैं, किन्तु राम केवल प्रीति चाहते हैं, अर्थात् सुमिरन से ही भला मानते हैं। राम का चरित्र समस्त सुखों को देना और दुःखों का निवारण करना ही है। राम के समान अन्य कोई भी सुर, नर, मुनि दीन लोगों की पीरा समझने वाला नहीं है- (दोष-दुःख-दरिद्र, दलैया दीनबन्धु राम। 'तुलसी' न दूसरो या दया निंधान दुनी मैं।। -कवितावली-उत्तर छः 21)। तुलसी के राम पापियों में भी श्रेष्ठ पापी की भक्ति से भी खुश होकर उसको जन्म जमान्तर के पापों से मुक्त कर देते हैं। परम भय से युक्त व्यक्ति को तुरन्त ही भय मुक्त कर देते हैं। यहाँ तक कि विश्वद्रोह कृत अध का भार भी सिर पर लादे हुए यदि कोई राम की शरण में आता है तो वह भी त्याज्य नहीं होता। अतः राम की शरणगत-वत्सलता के प्रमाण स्वरूप दोहावली, गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका और मानस में अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं। एक मां जिस प्रकार अपने शिशु का ध्यान रखती है, स्वयं राम उसी प्रकार अपने शरणागत को ध्यान रखते हैं।

राम की परमोदारता अकथनीय है। वे बिना सेवा से भी प्रसन्न हो जाते हैं जिसके कारण राम अपने प्रिय जनों को वो पद दे देते हैं, जो बड़े-बड़े ऋषि मुनि विभिन्न योग, तप करके भी प्राप्त नहीं कर पाते। परम स्नेही राम ने शबरी को वह पद दिया। इतना ही नहीं जो वैभव रावण ने घोर तपस्या करके शिव की कृपा से प्राप्त किया था उसे राम सहज ही बिना संकोच के सुग्रीव को सौंप देते हैं, अहिल्या का उद्धार किया, नीच निषाद को सखा

बनाकर दोनों ही लोकों में कीर्ति प्रदान की। वन्य प्राणी बन्दर-भालू को भी अपने परम स्नेह से नवाजा आदि अनेकों उदाहरण हमें राम की उदारता के तुलसी के काव्य में मिलते हैं।

परम औदार्य के कारण राम कोमलता, कारूण्य, कृपा, दया, क्षमा परोपकार आदि विशिष्ट गुणों से सम्पन्न है। स्वयं भरत और दशरथ राम के गुण रूप और शील का चिन्तन करते दिखाई देते हैं। स्वभाव से ही क्रुद्ध होने वाले स्वयं परशुराम राम के शील पर मुग्ध होकर कहते हैं- ('विनय सील करूना-गुन-सागर। जयति बचन रचना अति नागर।। - मानस बाल काण्ड - 284)। अतः राम का शील स्वभाव मन को आनंदित करने वाला तन को रोमान्चित और आंखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित करने वाला है।

राम का सौन्दर्य कल्पनातीत है। परम विरागी, ब्रह्मज्ञानी, विज्ञानी व्यक्ति अपने ब्रह्मचिन्तन के अपार आनन्द को ठुकराकर राम के रूप की स्तुति करते हैं। प्रत्यक्ष क्या यदि किसी ने स्वप्न में भी राम के दर्शन किए तो भी वह उसकी अनुभूति प्राप्त कर सकता है। राम के प्रत्येक अंग की ऊष्मा अप्रतिम है भक्तजन-सुखदायी हैं। उसके शरीर की छवि पर करोड़ों कामदेव निछावर हैं। उनके 'विपिन बिहारी तरकशधारी' रूप को अनेक रामोपासक ध्यान करते हैं। स्वयं सरस्वती आदि भी राम की अपार शोभा का वर्णन करने में असमर्थ हैं। तुलसी के राम सर्वशक्तिशाली हैं। वे अकेले ही रणभूमि में यदि अचल हो भी जाएं तो भी सारे सुर असुर एक होकर भी राम को परास्त नहीं कर सकते। राम में इतना सामर्थ्य है कि उनके 'भृकुटी विकास' मात्र से संसार की स्थिति और प्रलय दोनों होते हैं। वे तृण को वज्र और वज्र को तृण रूप में बदल सकते हैं। राम के धनुष-संधान मात्र से समुद्र भी त्रस्त होकर कंपित होने लगता है।

अतः इस प्रकार राम के चरित्र की अनेक गाथाएँ हैं, जो राम को मनुष्य से अलग करती है और त्रिदेव (विधि-हरि-हर) उनके बार बार समीप आते हैं और उन्हें विभिन्न वरदान देने के लिए उत्सुक होते हैं। वे तो सर्वज्ञ प्रभु महा विष्णु या परमात्मा ब्रह्म हैं। इसी के अंश से विभिन्न त्रिदेवों की उत्पत्ति होती है। जिस अनादि अनन्त ब्रह्म की महिमा के गान में असमर्थ होकर, वेद केवल अनुमान के सहारे सब भांति अलौकिक करनी वाला, जिसे घोषित करते हैं, वे केवल भक्त हितकारी कोमल पति राम है। उपासना का मूल आधार श्रद्धा है। जिसके तीन भेद बताए गए हैं— सात्विकी,

राजसी और तामसी। सात्विक उपासना का आलम्बन दैवीय शक्ति सम्पन्न देव होता है। राजसी उपासना का आलम्बन यक्षों की कोटि का देव या दानव होता है। तामस उपासना का आलम्बन भूत-प्रेतगण होते हैं।

तुलसी की उपासना सात्विक उपासना है क्योंकि इसका आलम्बन महान दैवी शक्तियों का सागर देवों का देव है। इसका लक्ष्य निष्काम, अविचल, अटल, अनन्य प्रेम है। इस उपासना में किसी प्रकार का कोई आदान-प्रदान नहीं है। राम के प्रति अपने अनन्य प्रेम को व्यक्त करने के लिए तुलसी मीन और चातक को प्रतीक रूप में ग्रहण करके कहते हैं कि जिस प्रकार मीन जल के बिना नहीं रह सकती और चातक स्वाति की बूँद के सिवा अन्य कोई जल ग्रहण नहीं कर सकता ठीक उसी प्रकार गोस्वामी जी भी राम के प्रेम के बिना नहीं रह सकते। यही उनकी मीनता और चातकता है। तुलसी के राम सीधे सच्चे भाव के भूखे हैं। यदि लेशमात्र भी छद्म भाव से कोई राम की उपासना करता है, तो राम उस उपासक को नहीं चाहते। राम की उपासना के लिए निर्मल हृदय का होना अत्यंत आवश्यक है, तभी राम के दर्शन संभव है। साधक चराचर को राममय देखकर स्वतः ही वंदना करने लगता है, जोकि रामोपासना का चरमोत्कर्ष है। तुलसी की रामोपासना के लिए गृह-त्याग को आवश्यक नहीं माना गया है और न ही गृहासक्ति को आवश्यक माना गया है। साधक के लिए विशेष स्थान की अनिवार्यता नहीं है। वह जंगल या गृह कहीं पर भी उपासना कर सकता है। जब साधक समस्त विकारों से रहित होता है, तो वह स्वयं प्रकाशमान हो जाता है। मन की निर्मलता ही रामोपासना का प्रधान अंग है। गोस्वामी जी आगम निगम पुराण के साथ ही परम्परा के भी पक्के अनुयायी हैं। उपासना के साथ-साथ आचार के द्वारा भी साधक राम की कृपा प्राप्त कर सकता है। यहाँ तुलसी आचार का स्वरूप वेद पुराणों में बताए गए स्वरूप को ही स्थान देते हैं। उपासक को अपने मन, वाणी और कर्म – तीनों को अनाचार के शिकंजे से दूर रखना चाहिए। अन्यथा राम की साधना सफल नहीं होगी। इसीलिए कवितावली में कहा है – 'करि हंस को वेष बड़ों सब सों, तजि दे बक बायस की करनी'।।

तुलसीदास जी ने नामोपासना का भी समर्थन किया है। उसका अत्यधिक महत्व भी बताया है। कलियुग में संसार रूपी भव सागर को पार करने का एक ही साधन है और वह है राम का नाम। सत्य युग, त्रेता और द्वापर युगों में जो गति लोगों को ध्यान, यज्ञ और पूजा से प्राप्त होती थी वही गति

कलियुग में जो लोग राम का नाम लेते हैं उन्हें प्राप्त हो जाती है। नाम कल्पतः है, इसे केवल कवि कल्पना नहीं समझना चाहिए क्योंकि इसी से गोस्वामीजी ने अभिमत फलदायकत्व लक्षित किया है। तुलसी के अनुसार निष्काम भाव, अनन्य प्रेम, श्रद्धा और विश्वास से ही नाम-जप अपना प्रभाव दिखाता है। राम और नाम में तारतम्य की चर्चा करते हुए तुलसी नाम को राम से प्रबल मानते हैं और मानस में कह देते हैं - 'ब्रह्म राम ते नाम बड़ बरदायक बरदानि। रामचरित सत कोटि महँ लिए महस जिय जानि।।'

मध्ययुग में कथा श्रवण और कीर्तन का विशेष महत्व रहा था। इससे पहले कभी भी इन दोनों साधनों का इतना महत्व नहीं रहा। कलियुग में भक्ति के अन्य साधन प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था। आर्थिक दृष्टि से देश की अवस्था बहुत ही दैन्य थी। बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन करना बहुत ही कठिन था। सत्ता में अन्य मत ही अधिक प्रबल था। सूफी, संतों ने दोनों ही मतों में समन्वय करने के लिए अंतः साधना पर बल दिया। इससे न तो जनता को किसी प्रकार की तृप्ति मिल रही थी, न ही सामूहिक धर्म चेतना का विकास हो पा रहा था। इस विपत्ति के समय यह बहुत आवश्यक था कि जनता संतुष्ट हो और सामूहिक धर्म का विकास हो। इसीलिए भक्त साधकों ने कथा श्रवण कीर्तन और नित्य पूजन की सामूहिक विधियां निकाली।

तुलसी ने मानस में भगवान श्री राम के रूप सौंदर्य का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया विशेषतः बालकाण्ड और अयोध्या काण्ड में। राम ध्यान के कारण कई काण्डों में मंगलाचरण के रूप में राम के स्वरूप का वर्णन मिलता है। 'रूप पूजा' पूजा का अंतिम चरण है। ईसा की दूसरी शताब्दी में वैष्णव पुनःत्थान के समय बौद्ध मंदिरों की होड़ में हिन्दू मंदिरों का आविर्भाव हुआ और त्रिमूर्ति की स्थापना देश के कोने-कोने में हो गई। 5-6 शताब्दियों में मूर्ति पूजा का उत्तरोतर विकास हुआ और कला (स्थापत्य, मूर्ति, चित्र) को उपासना के इस बाह्य रूप को संवारने का अवसर प्राप्त हुआ इसके परिणाम स्वरूप 16वीं शताब्दी में यह रूपोपासना तुलसी एवं सूर के काव्य में चरमोत्कर्ष रूप में मिलती है।

राम भक्ति साधना का कोई एक मार्ग निश्चित नहीं है। तुलसी ने अनेक साधन गिनाए हैं, जिनमें भक्ति योग और नवधा भक्ति प्रधान हैं, किन्तु उत्तर काण्ड में काग भुशुण्डि प्रसंग में पन्चधा साधनों का भी उल्लेख मिलता है। वे साधन हैं - श्रद्धा, ज्ञान, मति, इंद्रीय संयम और निष्ठा। अन्त में तुलसी ने इन

सभी साधनों का एक ही अंत बताया है, सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दर्शन पावा-मानस' भारतीय धार्मिक परम्परा में साधना के तीन मार्ग हैं ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग। तुलसी ने कर्म मार्ग को मानस में स्थान नहीं दिया है। तुलसी ने भक्ति को ज्ञान से ऊपर प्रतिष्ठित किया है। ज्ञान को भक्ति की नींव मानते हैं। ज्ञान के साधनों को ही भक्ति का साधन बना दिया है। वैराग्य, ध्यान और विवेक तथा अंतदृष्टि। वैराग्य का अर्थ सांसारिक विषयों का त्याग, ध्यान का अर्थ साकार से है, जिसका संबंध राम से। ध्यान में प्रेम और आत्मसमर्पण के भावों में गहरा संबंध है। विवेक और अंतदृष्टि को तुलसी अपनी साधना पद्धति में प्रमुख स्थान देते हैं।

मानस के अन्तर्गत जिस भक्ति की प्रतिष्ठा की गई वह वैधी भक्ति है। वह शास्त्रोक्त नवधा भक्ति ही वैधी भक्ति है। वन में जब भगवान श्री राम बाल्मीकि से रहने का स्थान पूछते हैं तो उत्तर में महर्षि भक्ति के नौ अंगों का ही वर्णन करते हैं - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन।

तुलसीदास ने भक्ति के इन सभी प्रकारों का वर्णन अपने काव्य में किया है। श्रवण भक्ति का प्रधान हेतु महापुरुषों का सत्संग होता है। जहां भी अवसर मिला तुलसीदास ने श्रवण भक्ति का महत्व बताने में चूक नहीं की। (श्रवण - जिनके स्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारी सुभग सरि नाना।। - मानस अयोध्या काण्ड-126।।) भगवान के किसी रमणीय स्वरूप का बाह्य सामग्री से सेवा पूजन करना अर्चन भक्ति है, इसके लिए पूजन की अनेक सामग्री हैं, जैसे धूप, दीप, नेवैद्य आदि। (आरती करहि मुदित पुर नारी। हरषहि निरखि कुँअर बर चारी।। - मानस बाल काण्ड - 347) कोल किरात जैसे असभ्य बनचारी लोग अर्चन की कोई विधि नहीं जानते किन्तु दोना भर-भर कर कन्द मूल भगवान के चरणों में अर्पित करते हैं। (कंद-मूल, भरी-भरी दोना। चले रंक जनु लूटन सोना - मानस अयोध्या काण्ड - 132)। आत्म निवेदन भक्ति में भक्त अहंकार शून्य होकर अपना तन-मन-धन जन सर्वस्व प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है। इसे शरण भक्ति भी कह सकते हैं। सोते जागते केवल प्रभु की शरण की आकांक्षा रहती है (जागत सोवत सरन तुम्हारी - मानस अयोध्या - 128)। इस प्रकार तुलसी ने अन्य भक्ति का भी वर्णन अपने काव्य में किया है, किन्तु इनकी भक्ति में दास्य भाव अधिक मिलता है। इससे इन्होंने शरणागति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

सुग्रीव और विभीषण शरणागत भक्त ही हैं। अतः तुलसी की दास्य भावना ने राम को स्वामी के रूप में ही देखा है। तुलसी ने जिस पारम्परिक भक्ति मार्ग का आलम्बन किया, उसे जिस प्रकार विकसित किया उसमें कोई साम्प्रदायिक स्वरूप नहीं है। कोई किसी भी देश–जाति, किसी भी मत का हो, वह भक्ति कर सकता है।

सच्चा भक्त वह है, जो ईश्वर के प्रति निश्छल प्रेम रखता है भक्ति की ओर उन्मुख होने वाले भक्तों के चार प्रकार बताए हैं – आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। भक्त कवियों ने प्रायः सभी प्रकार के भक्तों का किसी ना किसी रूप में वर्णन किया है। तुलसीदास ने तो चारों ही प्रकार के भक्तों के भावों की अभिव्यक्ति की है, उनके काव्य में आर्त भक्त का उदाहरण पार्वती हैं। जिज्ञासु भक्त का उदाहरण तुलसी के काव्य में गरुण है। अर्थार्थी भक्त भी तुलसी ने वर्णित किए हैं, जो राम की कथा को निष्कपट होकर गाता है, उसके जीवन की सारी मनोकामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। ज्ञानी भक्त का उदाहरण याज्ञवल्क्य है। उनके वर्णन एक ज्ञानी भक्त के उद्गार को व्यक्त करने वाले हैं।

तुलसी के समय देश में विभिन्न प्रकार की भक्ति की साधना चल रही थी। जैसे संतों की यो ग साधना, सूफियों की प्रेम साधना। किन्तु तुलसी ने सिर्फ राम भक्ति को ही स्वीकार किया। उस समय अन्य देव देवताओं की भक्ति साधना भी चल रही थी, किन्तु तुलसी का मन जितना राम की भक्ति में रमा उतना अन्य किसी देव देवता की भक्ति में नहीं रमा। तुलसी के आराध्य देव राम हैं। इसका अर्थ यह कदाचित नहीं की उन्होंने अन्य भक्ति साधना या देव देवताओं की निंदा की हो। उन्होंने सभी लोक साधनाओं को आदर और प्रेम भाव से देखा है। साधना के सभी अंगों पर प्रकाश डालते हुए तुलसी ने मुख्यतः नाम स्मरण को ही महत्व दिया है। हरि भक्ति साधना में श्रद्धा एवं विश्वास की अत्यन्त आवश्यकता होती है। स्वयं तुलसी की साधना दास्यभाव की भक्ति है। जिसका मूल यंत्र शरणागति है। कवितावली इसी दास्य भाव से ओत प्रोत है। अतः भक्ति का फल ही यही है कि इस भक्ति चिन्तामणि के पास रहने से मानस–रोग (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर) निर्बल हो जाते हैं। अतः तुलसी के अनुसार भक्ति से चरित्र का विकास होता है, विशेषाधिकार की प्राप्ति होती है और विश्राम प्राप्त होता है।

9

गीतावली

गीतावली गोस्वामी तुलसीदास की काव्य कृति है। गीतावली तुलसीदास की प्रमाणित रचनाओं में मानी जाती है। यह ब्रजभाषा में रचित गीतों वाली रचना है, जिसमें राम के चरित की अपेक्षा कुछ घटनाएँ, झाँकियाँ, मार्मिक भावबिन्दु, ललित रस स्थल, करुणदशा आदि को प्रगीतात्मक भाव के एकसूत्र में पिरोया गया है। ब्रजभाषा यहाँ काव्यभाषा के रूप में ही प्रयुक्त है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि गीतावली की भाषा सर्वनाम और क्रियापदों को छोड़कर प्राय: अवधी ही है।

'गीतावली' नामकरण जयदेव के गीतगोविन्द, विद्यापति की पदावली की परम्परा में ही है, जो नामकरण मात्र से अपनी विषयवस्तु को प्रकट करती है। गीतावली में संस्कृतवत तत्सम पदावली का प्रयोग सूरदास की लोकोन्मुखी ब्रजभाषा की तुलना में न केवल अधिक है, बल्कि तुलसी के भावावेगों के व्यक्त करने में वह सहायक सिद्ध हुई है। **रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार हृदय के त्रिविध भावों की व्यंजना गीतावाली के मधुर पदों में देखने में आती है।

रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है ''गीतावली'' की रचना गोस्वामी जी ने सूरदास के अनुकरण पर ही की है। बाललीला के कई पद ज्यों के त्यों सूरसागर में भी मिलते हैं, केवल 'राम' 'श्याम' का अन्तर है। लंकाकाण्ड तक तो मार्मिक स्थलों का जो चुनाव हुआ है वह

तुलसी के सर्वथा अनुरूप है। पर उत्तरकाण्ड में जाकर सूरपद्धति के अतिशय अनुकरण के कारण उनका गंभीर व्यक्तित्त्व तिरोहित सा हो गया है, जिस रूप में राम को उन्होंने सर्वत्र लिया है, उनका भी ध्यान उन्हें नहीं रह गया। सूरदास में जिस प्रकार गोपियों के साथ श्रीकृष्ण हिंडोला झूलते हैं, होली खेलते हैं, वही करते राम भी दिखाये गये हैं। इतना अवश्य है कि सीता की सखियों और पुरनारियों का राम की ओर पूज्य भाव ही प्रकट होता है। राम की नखशिख शोभा का अलंकृत वर्णन भी सूर की शैली में बहुत से पदों में लगातार चला आया है।

'गीतावली' मूलतः कृष्ण काव्य परम्परा की गीत पद्धति पर लिखी गयी रामायण ही है। गीतावली का वस्तु-विभाजन सात काण्डों में हुआ है। किन्तु इसका उत्तरकाण्ड अन्य ग्रन्थों के उत्तरकाण्ड से बहुत भिन्न है। उसमें रामरूपवर्णन, राम-हिण्डोला, अयोध्या की रमणीयता, दीपमालिका, वसन्त-बिहार, अयोध्या का आनन्द, रामराज्य आदि के वर्णन में माधुर्य एवं विलास की रमणीय झाँकियाँ प्रस्तुत की गयी हैं।

गीतावली में भगवान श्रीराम की कथा कही गयी है अथवा यों कहना चाहिए कि राम-कथा सम्बन्धी जो गीत गोस्वामी तुलसीदास ने समय-समय पर रचे, वे इस ग्रन्थ में संग्रहित हुए हैं। सम्पूर्ण रचना सात खण्डों में विभक्त है। काण्डों में कथा का विभाजन प्रायः उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में हुआ है। किन्तु न इसमें कथा की कोई प्रस्तावना या भूमिका है और न ही 'मानस' की भाँति इसमें उत्तरकाण्ड में अध्यात्मविवेचन। बीच-बीच में भी 'मानस' की भाँति आध्यात्मिक विषयों का उपदेश करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। सम्पूर्ण पदावली राम-कथा तथा रामचरित से सम्बन्धित है। मुद्रित संग्रह में 328 पद हैं।

पूर्ववर्ती रूप

'गीतावली' का एक पूर्ववर्ती रूप भी प्राप्त हुआ है, जो इससे छोटा था। उसका नाम 'पदावली रामायण' था। इसकी केवल एक प्रति प्राप्त हुई है और वह भी अत्यन्त खण्डित है। इसमें सुन्दर और उत्तरकाण्डों के ही कुछ अंश बचे हैं और उत्तरकाण्ड का भी अन्तिम अंश न होने के कारण पुष्पिका नहीं रह गयी है। इसलिए प्रति की ठीक तिथि ज्ञात नहीं है। यह संग्रह वर्तमान से छोटा रहा होगा। यह इससे प्रकट है कि प्राप्त अंशों में

वर्तमान संग्रह के अनेक पद बीच–बीच में नहीं है। यदि यह कहा जाय कि यह वर्तमान का कोई चयन होगा, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि कभी–कभी छन्दों का क्रम भिन्न मिलता है। इसके अतिरिक्त इसके साथ की ही एक प्रति 'विनयपत्रिका' की प्राप्त हुई है, जिसका प्रति में ही 'राम गीतावली' नाम दिया हुआ है। वह भी 'विनयपत्रिका' का वर्तमान से छोटा पाठ देती है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पदावली रामायण' का वह पाठ, जो प्रस्तुत एक मात्र प्रति में मिलता है, 'गीतावली' का ही कोई पूर्व रूप रहा होगा।

आलोचक कथन

'गीतावली' में कुछ पद ऐसे भी हैं, जो 'सूरसागर' में मिलते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि ये पद उसमें 'सूरसागर' से गये होंगे। सूरदास, तुलसीदास से कुछ ज्येष्ठ थे, इसलिए कुछ आलोचक तो यह भी कहने में नहीं हिचकते कि इन्हें तुलसीदास ने ही 'गीतावली' में रख लिया होगा और जो इस सीमा तक नहीं जाना चाहते, वे कहते हैं कि तुलसीदास के भक्तों ने उनकी रचना को और पूर्ण बनाने के लिए यह किया होगा। किन्तु एक बात इस सम्बन्ध में विचारणीय है। 'गीतावली' की प्रतियाँ कई दर्जन संख्या में प्राप्त हुई है और वे सभी आकार–प्रकार में सर्वथा एक सी हैं और उन सबों में ये छन्द पाये जाते हैं।

सूरसागर की प्रतियाँ

'सूरसागर' की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें आकार–प्रकार भेद अधिक है। कुछ में केवल कुछ सौ पद हैं तो कुछ में कुछ हजार पद हैं। उनमें क्रम आदि में भी परस्पर काफी वैभिन्न्य है और फिर 'सूरसागर' की सभी प्रतियों में ये पद पाये जाते हैं, या नहीं, यह अभी तक देखा नहीं गया है। 'सूरसागर' के मुद्रित पाठ में अन्य अनेक ज्ञात कवियों–भक्तों के पद भी सम्मिलित मिलते हैं। ऐसी दशा में वास्तविकता तो उलटे यह ज्ञान पड़ती है कि ये पद तुलसीदास की ही 'गीतावली' के थे, जो अन्य कवियों–भक्तों की पदावली की भाँति 'सूरसागर' में सूरदास के प्रेमियों के द्वारा सम्मिलित कर लिये गये।

अंतर

तुलसीदास ने कुल लगभग सात सौ पदों की रचना की है और गीति शिल्प में वे किसी से पीछे नहीं हैं। ऐसी दशा में वे तीन पद 'गीतावली' में और तीन-चार पद 'कृष्ण गीतावली' में सूरदास या किसी अन्य कवि से लेकर क्यों रखते? इसमें जो राम कथा आती है, वह प्रायः 'रामचरितमानस' के समान ही है, केवल कुछ विस्तारों में अन्तर है, जो 'रामचरितमानस 'के पूर्व रचे ग्रन्थों में ही मिलते हैं, और कुछ ऐसे हैं, जो कवि की किसी भी अन्य कृति में नहीं मिलते हैं।

प्रथम प्रकार के अन्तर निम्नलिखित हैं-

परशुराम-राम मिलन मिथिला की स्वयंवर भूमि में न होकर बारात की वापसी में होता है और उसमें विवाद परशुराम-राम में ही होता है, लक्ष्मण से नहीं।

राम के राज्यारोहण के अनन्तर 'स्थान, यति, खग' के न्याय, ब्राह्मण बालक के जीवन-दान, सीता के निर्वासन और लव-कुश जन्म की कथाएँ आती हैं। इसी विस्तार में 'रामाज्ञा प्रश्न' भी है।

दूसरे प्रकार के अन्तर निम्नलिखित है–

स्वयंवर भूमि में जब विश्वामित्र राम को धनुष तोड़ने के लिए आज्ञा देते हैं, जनक राम के कृतकार्य होने के विषय में सन्देह प्रकट करते हैं। इस प्रकार विश्वामित्र जनक के योग-वैराग्य की सराहना करते हुए कहते हैं कि ऐसा वे राम के स्नेह के वश में होने के कारण समझते हैं और राम भी जनक के योग वैराग्य की उस सराहना का समर्थन करते हैं, जब इन सबके अनन्तर जनक की शंका का निवारण हो जाता है, 'गीतावली' में तब राम धनुष तोड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं।

विश्वामित्र के साथ गये हुए राम-लक्ष्मण के विषय में माताएँ चिन्तित होती हैं।

वनवास की अवधि में कौशल्या अनेक बार राम-विरह में व्यथित होती हैं।

राम जटायु के प्रति पितृ-स्नेह और शबरी के प्रति मातृ-स्नेह व्यक्त करते हैं।

रावण के द्वारा सीता के हरण की सूचना राम को देव-गण देते हैं।

हनुमान जब सीता को राम की मुद्रिका देते हैं और सीता हनुमान से राम का कुशल पूछती हैं और मुद्रिका देती है।

रावण से अपमानित होकर विभीषण सीधे राम की शरण में नहीं जाता है।

राम के राज्याभिषेक के अनन्तर दोलोत्सव, दीपमालिकोत्सव तथा बसन्तोत्सव आदि होते हैं, जिसमें अयोध्या का समस्त नर–नारी समाज निस्संकोच भाव से सम्मिलित होता है।

'मानस' 'गीतावली' की तुलना में आकार–प्रकार से चौगुना है और प्रबन्ध काव्य हैं। फिर भी ये कथा विस्तार से ज्ञात होता है कि 'गीतावली' के कुछ अंश 'मानस' के पूर्व की रचना अवश्य होंगे और इसी प्रकार उपर्युक्त दूसरे प्रकार के कथा–विस्तारों से ज्ञात होता है कि उसके अंश 'रामचरितमानस' के बाद की रचना होंगे। 'रामचरितमानस' के समान तो 'गीतावली' का अधिकांश है ही, जिसका यहाँ पर कोई प्रमाण देना अनावश्यक होगा। इस प्रकार 'गीतावली' के पदों की रचना एक बहुत विस्तृत अवधि में हुई होगी।

विशिष्ट स्थान

'गीतावली' का तुलसीदास की रचनाओं में एक विशिष्ट स्थान है, जिस पर अभी तक यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है। अनेक बातों में यह 'रामचरितमानस' के समान होते हुए भी गीतों के साँचे उसी की राम–कथा को ढाल देने का प्रयास मात्र नहीं है। यह एक प्रकार से 'मानस' का पूरक है। 'मानस' में जीवन के कोमल और मधुर–पक्षों को जैसे जान–बूझकर दबाया गया हो। 'मानस' में कौशल्या राम को वन भेजकर केवल एक बार व्यथित दीख पड़ती है, वह है भरत के आगमन पर, किन्तु फिर पुत्र शोकातुरा कौसल्या के दर्शन नहीं होते। 'गीतावली' में तो अनेक बार वह राम विरह में धैर्य खोती चित्रित होती है, उसमें तो वह राम विरह में उन्माद–ग्रस्त हो चुकी हैं–

कबहु प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे।
उठहु तात बलि मातृ बदन पर अनुज सखा सब द्वारे।।
कबहुँ कहति यों बड़ी बार भई जाहु भूप पहं भैया।
बन्धु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरी मैया।।

आदि पदों में कौसल्या का जो चित्र अंकित किया गया है, वह 'मानस' में नहीं किया गया है और कदाचित जान-बूझकर नहीं किया गया है।

सीता के साथ राम की जिस 'माधुरी-विलास-हाल' का चित्रण चित्रकूट की दिनचर्या में 'गीतावली' में हुआ है अथवा उसके उत्तरकाण्ड में भोर में 'प्रिय प्रेम रस पागे' अलसाये हुए राम का जो चित्रण हुआ है, और विभिन्न प्रसंगों में अयोध्या के नारी-समाज द्वारा राम के जिस सौन्दर्य-पान का वर्णन किया गया है, उनका एक भी समतुल्य 'मानस' में नहीं है।

'मानस' की रचना तुलसीदास ने सम्पूर्ण समाज के लिए की थी। 'सुर सरि सम सब कहै हित होई' यह भावना उनकी रचना की सीमाओं का कहीं भी अतिक्रमण नहीं होने दिया, जबकि 'गीतावली' के अधिकतर पदों की रचना उन्होंने सम्भवतः केवल भक्त और रसिक समुदाय के लिए की। इसलिए इसमें हमें 'मानस' के तुलसीदास की अपेक्षा एक अधिक वास्तविक और हाड़-मांस के तुलसीदास के दर्शन होते हैं।

❑❑❑